मुद्रक
श्री देवचन्द्र विशारद, एम. बी. प्रेस, लाहौर

प्रकाशक
पंडित भगवद्दत्त बी. ए., वैदिक अनुसन्धान संस्था
माडल टाउन (पंजाब)

लेखक की अन्य पुस्तकें

१—वैदिक वाङ्मय का इतिहास प्रथम भाग
(वेदों की शाखाएँ) ३)

२—ऋषि दयानन्द के पत्र और विज्ञापन दो भाग ।।।≡)

३—भारतवर्ष का इतिहास प्रथम भाग २)

द्वितीय संस्करण—दो हज़ार

आत्म-निवेदन

पञ्जाब में हिन्दी भाषा की उत्तरोत्तर थोड़ी-थोड़ी उन्नति हो रही है। इस उन्नति में पञ्जाब यूनिवर्सिटी का भी पर्याप्त हाथ है। यहाँ की हिन्दी-परीक्षाओं ने जनसाधारण में और विशेष कर महिलाओं में हिन्दी का प्रेम जागरित कर दिया है। इन परीक्षाओं की पाठ-विधि में ऐसी रचनाओं की आवश्यकता है कि जिन में प्राचीन जातीय-गौरव के प्रदर्शन के साथ साथ भाषा का भी ध्यान रक्खा जाय। इन्हीं बातों को ध्यान में रख कर मैंने इस 'भारतीय महिला' को लिखा है।

इस ग्रन्थ में लिखे गए चरित्र कई अन्य पुस्तकों में भी यत्र-तत्र मिलते हैं, परन्तु मैंने उनकी ऐतिहासिक बातों का अधिक ध्यान रखा है। प्राचीन देवियों के जीवन-चरित्र लिखते हुए विश्व-कवि वाल्मीकि और सर्व-वेदविद् द्वैपायन व्यास की भाषा का ही मैंने रूपान्तर किया है। आधुनिक काल की वीरांगनाओं के चरित्र एकत्र करने में सुप्रसिद्ध इतिहासज्ञ रायबहादुर गौरीशंकर हीराचंद ओझा के 'राजपूताना के इतिहास' से मुझे पर्याप्त सहायता प्राप्त हुई है। ऐतिहासिक अन्वेषण के साथ ही प्रचलित कथाएँ भी दी गई हैं।

आशा है कि हिन्दी-भाषा के प्रेमी इस छोटे से ग्रन्थ का समुचित आदर करेंगे।

बृहस्पतिवार   भगवद्दत्त

१२ सितम्बर १९३५

निमिविदेह के वंशज होने के कारण वैदेह भी कहलाए। इसी कारण राजर्षि सीरध्वज को भी प्रायः जनक नाम से ही पुकारा जाता है। राजा जनक आदर्श राजा थे। गृहस्थ होते हुए भी, संसार के समस्त कामों का संपादन करते हुए भी, वे योगनिरत, संसार से निर्लिप्त, आसक्ति-शून्य और ब्रह्मज्ञानी थे। ब्राह्मण लोग भी उनसे उपदेश ग्रहण करने आते थे और उनके साथ धर्म-चर्चा और ब्रह्म-मीमांसा करने में पवित्र आनंद का अनुभव करते थे। इसी कारण ऋषि मुनियों ने उनको राजर्षि की उपाधि प्रदान की थी।

माता-पिता के, अपरिमित स्नेह से बालिका सीता शुक्लपक्ष के चन्द्रमा की तरह दिन-दिन बढ़ने लगी। सर्व-गुण-संपन्ना सीता को पुत्री-रूप में पाकर राजा जनक भी अपने को धन्य समझते थे। जब उसने बाल्यावस्था से किशोरावस्था में पदार्पण किया तब राजर्षि जनक को यह चिंता हुई कि किस सुयोग्य वर के हाथ सीता को सौंपा जाय। उस समय राजर्षि जनक ने यह प्रतिज्ञा की कि पुरखाओं के समय से हमारे घर में रखे हुए महाकाय शिव-धनुष को जो वीर उठा सकेगा उसी के साथ मैं अपनी कन्या का विवाह करूँगा।

सीता के रूप की महिमा को सुन कर अनेकों राजा उसके साथ विवाह करने की इच्छा से राजर्षि जनक के यहाँ आते, किन्तु शिव-धनुष को उठा न सकने के कारण लज्जित हो कर लौट जाते थे। कहते हैं कि लंका-नरेश रावण भी एक बार सीता के रूप-गुण की प्रशंसा सुनकर उसे पाने की इच्छा से आया था, परन्तु प्रतिज्ञा पूरी न कर पाने के कारण उसे भी अपमानित होकर वापिस जाना पड़ा था। अन्त में कई राजाओं ने मिलकर ईर्ष्या-वश

मिथिला को आ घेरा पर राजर्षि जनक ने अपने तप और बल से सबको परास्त कर दिया; पर दिन-रात उन्हें यह चिंता खाने लगी कि क्या पृथ्वी में ऐसा वीर है भी या नहीं जो उनकी प्रतिज्ञा को पूरा कर सके अथवा पृथ्वी वीर-विहीन हो गई है और विधाता को वैदेही का विवाह स्वीकृत ही नहीं।

८

उन दिनों अयोध्या में रघुवंशी वीराग्रगण्य चक्रवर्ती महाराजा दशरथ राज्य करते थे। उनकी तीन रानियाँ थीं। बड़ी कौसल्या से रामचन्द्र, मँझली कैकेयी से भरत तथा कनिष्ठा सुमित्रा से लक्ष्मण और शत्रुघ्न, इस प्रकार उनके चार पुत्र थे। चारों ही विद्या, बल, शूरता आदि सब गुणों से संपन्न थे। चारों भाई परस्पर बड़ा प्रेम करते थे पर राम और लक्ष्मण की जोड़ी तो अनुपम थी।

एक दिन महर्षि विश्वामित्र ने आकर महाराज दशरथ से निवेदन किया—'महाराज आजकल हम एक वृहत् यज्ञ के अनुष्ठान में लगे हैं परन्तु राक्षसों के अत्याचार के कारण उसका निर्विघ्न पूरा होना कठिन हो गया है। वे यज्ञ-वेदी पर मांस [illegible] हैं और [illegible] का वध करते हैं। आप क्षत्रिय राजा हैं [illegible] और हमारे यज्ञ की रक्षा कर [illegible] रामचन्द्र और लक्ष्मण [illegible] धनुर्धारी हैं। [illegible]

[illegible]

[illegible]

के कहने से अनमने मन से महाराज दशरथ ने दोनों राजकुमारों को ऋषि के साथ जाने की आज्ञा दे दी।

आश्रम में पहुँचकर रामचन्द्र और लक्ष्मण ने मारीच और सुबाहु आदि कई राक्षसों का संहार किया। इस प्रकार महर्षि विश्वामित्र का यज्ञ निर्विघ्न समाप्त हुआ।

रामचन्द्र के हस्तलाघव और शरसंधान को देख महर्षि विश्वामित्र को विश्वास हो गया कि ये राजर्षि जनक के धनुष को सहज ही उठा सकेंगे, और उनकी अनुपम गुण-संयुक्ता कन्या भी इनके ही योग्य है। अतः यज्ञ समाप्त होने पर विश्वामित्र ऋषि तथा अन्य ऋषिगण उन दोनों राजपुत्रों सहित जनक का यज्ञ देखने के बहाने चल दिये। कई देश, नगर और नदियाँ पार करके सारी मंडली जनकपुर के समीप पहुँची। राजा को उनके आगमन की सूचना पहले ही से मिल गई थी अतः ऋषि के यज्ञ-मण्डप के निकट आते ही राजर्षि जनक ने अपने पुरोहित शतानन्द तथा अमात्य सहित उनका स्वागत किया और बड़े सम्मान से उन्हें उत्तम आसन देकर यथा-शास्त्र उनकी पूजा की। अनन्तर वे बोले— "महर्षे! आपके पधारने से मैं कृतकृत्य हो गया हूँ, यह यज्ञ भी सफल हो गया है। कहिये किस उद्देश्य से आपका यहाँ आगमन हुआ है, और ये दोनों तेजस्वी, वीर्यवान तथा तरुण राजपुत्र कौन हैं, तथा किस उद्देश्य से यहाँ आये हैं। इनका सुन्दर, सुगठित तथा कोमल शरीर देखकर मुझे बड़ा मोह होता है, अतः कृपया इनका परिचय देकर कृतार्थ कीजिए।" यह सुन विश्वामित्र ने कहा—"राजर्षे! ये अयोध्या के चक्रवर्ती महाराज दशरथ के पुत्र राम और लक्ष्मण हैं। यज्ञ की रक्षा के लिए महाराज ने इन्हें मेरे साथ भेजा था।

इन्होंने अपने अद्भुत पराक्रम से सुबाहु और मारीच आदि सब राक्षसों को परास्त किया। मैंने सुना था कि महाकाय शिव-धनुष को उठाने वाले के साथ आपने अपनी अनिंद्य-सुन्दरी कन्या का विवाह करने की प्रतिज्ञा की है। यद्यपि आपकी प्रतिज्ञा बड़ी कठिन है तथापि मुझे विश्वास है कि रामचन्द्र उस प्रतिज्ञा को पूर्ण करने में समर्थ होंगे। अतः इस उद्देश्य से और आपका यज्ञ देखने की इच्छा से ही मैं इधर आया हूँ।" विश्वामित्र के वचन सुन राजा जनक बड़े आनन्दित हुए, उन्होंने शीघ्र ही अपने सेवकों को वहाँ उस संदूक को लाने की आज्ञा दी जिसमें धनुष रक्खा था। फिर वे विश्वामित्र से बोले—'मुनिवर! ज्ञात होता है कि मुझे उपकृत करने के लिए ही आपका यहाँ आगमन हुआ है। अहा, यह सुन्दर और तरुण दशरथ-पुत्र इस धनुष को उठाने में सफल हो जाय तो इस संसार में मेरे समान भाग्यशाली पुरुष कोई भी न होगा। मेरी रात दिन की चिन्ता दूर हो जायगी।' इतने में अमात्यों ने यज्ञ मण्डप में उस सन्दूक को लाकर खोला तब [illegible] विश्वामित्र ने राम को सम्बोधन करके कहा—

[illegible]

ऋषि के वचन सुनते ही रामचन्द्र [illegible] [illegible]

[illegible]

रहा। जनक के पुरोहित शतानंद ने सीता को आज्ञा दी कि व बढ़कर स्वयं रामचन्द्र जी के गले में जयमाला पहनावें। सुन्द सखियाँ मंगलाचार गाने लगीं। सीता आगे बढ़ी। महाकवि तुलसीदास ने रामचन्द्र जी के गले में जयमाला पहनाती हुई सीत का क्या ही अद्भुत वर्णन किया है—

तन सकोच मन परम उछाहू, गूढ़ प्रेम लखि परइ न काहू।
जाइ समीप राम छवि देखी, रहि जनु कुँवरि चित्र अवरेखी।
चतुर सखी लखि कहा बुझाई, पहिरावहु जयमाल सुहाई।
सुनत जुगल कर माल उठाई, प्रेम बिबस पहिराइ न जाई।
सोहत जनु जुग जलज सनाला, ससिहि सभीत देत जयमाला।
गावहिं छवि अवलोकि सहेली, सिय जयमाल राम उर मेली।

तदनन्तर राजर्षि जनक ने महाराज दशरथ को बुलाने के लि शीघ्रगामी दूत अयोध्या को भेजे। उनके मुख से यह सुसंवाद पाकर महाराज दशरथ के हर्ष की सीमा न रही, उन्होंने लक्ष्मण कुल-गुरु वसिष्ठ, राजकुल की स्त्रियों तथा मित्र कुटुंबियों सहित मिथिला को प्रस्थान किया। राजा जनक ने आगे बढ़कर अगवानी की और उनका यथोचित आदर-सत्कार किया। फिर आनन्दित होकर कहा—"धन्य मेरे भाग्य, आज मेरे घर रघुवंशी महाराज दशरथ अपने पुत्रों सहित मेरी कन्या को अंगीकार करने के लिए पधारे हैं तथा महापूज्य वसिष्ठ ऋषि के चरणस्पर्श से मेरी नगरी पवित्र हो रही है। आज राजा रघु के वीर-श्रेष्ठ कुल से मेरे कुल का सम्बन्ध होता है, अत: मैं अपने भाग्य को जितना भी सराहूँ उतना ही थोड़ा होगा। कुमार रामचन्द्र ने तो प्रतिज्ञा पूरी कर सीता को पाया ही है, पर मैं लक्ष्मण को भी अपनी दूसरी कन्या उर्मिला अर्पण करता हूँ।

इसके बाद ऋषि विश्वामित्र की सलाह से राजर्षि सीरध्वज जनक ने अपने भाई कुशध्वज जनक की दोनो कन्याएँ—माडवी और श्रुतकीर्त्ति—भरत और शत्रुघ्न को अर्पण कर दी।

बड़े समारोह से विधिवत् सबका विवाह-संस्कार हुआ। बड़े आदर-भाव के साथ राजा जनक के यहाँ कई दिन रहकर महाराज दशरथ ने फिर सबके साथ अयोध्या के लिए प्रस्थान किया।

३

पुत्र और पुत्रवधुओं सहित दशरथ अयोध्या मे पहुँचे। अयोध्या मे आनन्द और बधाई के बाजे बजने लगे। नगर की कुलनारियो के नेत्र तो सीता के अनुपम रूप को देखकर तृप्त न होते थे। कौसल्या आदि माताएँ वधुओ के आगमन से अत्यन्त प्रसन्न हुई। महाराज दशरथ का घर सौभाग्य तथा ऐश्वर्य से सुखमय हो उठा। यह प्रसन्नता और सुख की लहर निरंतर बारह वर्ष तक बहती रही। रामचन्द्र इन दिनो अपने पिता को राजकाज मे सहायता देते थ। एक दिन महाराज दशरथ ने सोचा कि अब मै वृद्ध हो गया हूँ अत रामचन्द्र को युवराज बनाकर मुझे प्राचीन परिपाटी के अनुसार वन मे जाना चाहिए यह सोच उन्होने कुल गुरु वसिष्ठ से कहा

> नाथ राम करिये युवराज कहिये कृपा कारि करिय समाज।
> मोहि अछत यह होइ उछाहू, लहहि लाग सब लोचन लाहू।
> पुनि न सोच तन रहइ कि जाऊ जेहि न होइ पाछे पछताऊ।

राजा के कथनानुसार कुलगुरु ने राज्य के सब विद्वानो ब्राह्मणो सामन्तो और मत्रियो को बुलाया। राजा दशरथ ने उनके सामने भी अपना यही विचार प्रकट किया। सबने सहर्ष एकस्वर से स्वीकृति प्रदान की। सब लोग उस आनन्दोत्सव की बाट जोहने

लगे। गुरु वसिष्ठ मंगल-सामग्री जुटाने लगे। राजमार्ग की सजावट होने लगी, चारों ओर उत्सव की तैयारियाँ होने लगीं, समस्त नगरी में एक अपूर्व प्रसन्नता का साम्राज्य था। अन्तःपुर में आनन्द की धारा बहने लगी।

परन्तु किसको पता था कि यह सब प्रसन्नता, शरद्-काल के बादल के समान एक क्षण में ही विलीन हो जायगी। कौन जानता था कि विधि का विधान कुछ और ही है। रानी कैकेयी की दासी मंथरा ने जब यह समाचार सुना तो उसे लकवा मार गया। वह उदास मुँह बनाकर कैकेयी के पास पहुँची। उसने कैकेयी को सूचना दी कि कल रामचन्द्र को युवराज-पद मिल रहा है। कैकेयी ने यह हर्ष-समाचार सुन तत्क्षण अपना हार उतार कर उसे दे दिया। पर उस कुब्जा दासी ने वह हार स्वीकार न किया और क्रोध से बोली—"प्रसन्नता तुम को हो सकती है मुझे तो नहीं है। रानी तुम सचमुच बड़ी भोली हो। राजा ने तुम्हारे पुत्र को परदेश भेज दिया है और ऐसे समय वे राम को युवराज-पद दे रहे हैं। अब रामचन्द्र राजा होंगे और लक्ष्मण उनके सामंत; कौशल्या राजमाता होंगी और तुम तथा भरत उनकी सेवा करने वाले।" यह सुन पहले तो कैकेयी ने कहा—

मेरे स्वामी सेवक लघु भाई, दिनकर कुल-रीति सुहाई।

पर थोड़ी देर बाद ही कुटिल मंथरा ने उस पर ऐसा रंग चढ़ाया कि कैकेयी स्वयं यह सोचने लगी कि किस प्रकार इस ... से बचा जाय, किस प्रकार रामचन्द्र का राज्याभिषेक न ... दिया जाय। तब मंथरा ने उसे सुझाया कि एक बार लड़ाई में तुमने महाराज की सहायता की थी, उस अवसर पर महाराज ने तुम्हें दो वर देने को कहे थे। वे ही दोनों वर तुम राजा से इस

समय माँग लो—एक से भरत को राजगद्दी, दूसरे से राम को चौदह वर्ष का वनवास। इतनी लंबी अवधि के बाद राम वन से वापिस आ सकें यह संभव नहीं। यदि आ भी गये तो भरत का प्रभाव स्थिर हो जाने पर यहाँ उनकी दाल न गल पायगी। बस, तुम राजा के आने से पहले ही कोपभवन में जा बैठो और जब तक वे रामचन्द्र की शपथ न खायें तब तक तुम कुछ न कहना। दासी की अनुमति के अनुसार कैकेयी वस्त्राभूषण उतार क्रुद्ध सर्पिणी की तरह कोपभवन में जा कठिन भूमि पर लोटने लगी।

आनन्द में मग्न राजा नियमानुसार कैकेयी के मन्दिर में पहुँचे। प्रतिहारी ने पता दिया कि रानी कोपभवन में है। राजा विस्मित थे वे उसके क्रुद्ध होने के कारण का अनुमान न कर सके। तत्क्षण कोपभवन में गये। भीतर प्रविष्ट होते ही उन्होंने देखा कि कैकेयी पृथ्वी पर लेटी हुई है। राजा ने उससे पूछा— प्रिये इस आनन्द के अवसर पर तुम्हारे क्रोध का क्या कारण है ? बताओ, मुझे राम की शपथ जो तुम कहोगी वही तुम्हें दूँगा। इस पर कैकेयी ने बड़े हठ के अनन्तर अपने वही दो वर माँगे जिन्हें सुनते ही दशरथ संज्ञाहीन हो गये चेतना आने पर वे बहुत देर तक कैकेयी को मनाते रहे पर वह न मानी अन्त में दशरथ ने प्रार्थना की कि तुम भरत को राज्य दे दो पर रामचन्द्र को वनवास न दो पर मथरा की शिक्षा से यह कब स्वीकृत हो सकता था। उसने राजा को अन्तिम बार स्पष्ट कह दिया—

होत प्रात मुनि बेष धरि जौ न राम बन जाहिं।
मोर मरन राउर अजस नृप समझिय मन माहिं।

सचमुच दशरथ की तत्कालीन दशा का वर्णन न हो सकता था। वे बार बार राम का नाम लेकर मूर्छित हो जाते थे और

हृदय में यही मनाते थे कि सवेरा ही न हो ताकि कोई रामचन्द्र से जाकर यह कह ही न सके। पर किसी के मनोरथ कब पूरे हुए हैं। दिनमणि ने किसके सुख और दुःख पर ध्यान दिया है!

सवेरा हुआ। सुमंत्र राजा के दर्शन को पहुँचे, पर व्याकुल राजा को देखकर विस्मित रह गये। फिर कैकेयी की आज्ञा से राम को वहीं बुला लाये। राम को देखते ही 'राम' इतना कहते ही राजा फिर चेतना-हीन हो गये।

तब कैकेयी ने उन्हें सारी कहानी सुनादी। पितृ-भक्त राम पिता के वचन को पालने के लिए तत्क्षण वनवास की तैयारी करने के लिए तथा विदा होने के लिए माता कौसल्या के पास पहुँचे। जब माता कौसल्या ने अपने पुत्र के मुख से यह कुसमाचार सुना तब वे सन्न ही न रह गईं, अपितु कुठाराघात से छिन्न कदली-वृक्ष की भाँति मूर्छित हो पृथ्वी पर गिर पड़ीं। श्री रामचन्द्र जी ने कठिनता से उन्हें उठाया और समझाया कि आपकी जैसी माता का पुत्र भी क्या पिता की आज्ञा का पालन न करे, पिता की प्रतिज्ञा को तोड़ दे, क्या उसे यही शोभा देता है? तब विवश हो उन्होंने शान्ति-पूर्वक आज्ञा दे दी और राम उनकी चरण-वन्दना कर अपने महल की ओर प्राणप्रिया सीता से विदा लेने को चले।

उस समय श्रीराम की विचित्र ही अवस्था थी। उनकी मुखाम्बुजश्री, जिसके विषय में कवियों ने लिखा है, "प्रसन्नता या न गताभिषेकतस्तथा न मम्लौ वनवासदुःखतः," इस समय उड़ चुकी [illegible]। चिरानुरक्ता प्रियतमा को यौवन में चिर-विरह के दारुण [illegible] में डुबोकर चले जाना होगा, यह विचार ही उनके लिए कष्टकर हो रहा था। अभिषेकोत्सव की प्रतीक्षा में जिसका चित्त प्रफुल्लित हो रहा था उस कुसुम से कोमल रमणी को अकस्मात्

वज्रपात के समान यह दारुण संवाद कितना चकित और व्यथित कर देगा, यह सोचते ही रामचन्द्र विचलित हो रहे थे. उनके मुख पर स्वेद की बूँदे चमक रही थीं। उनके स्वेदयुक्त और उतरे हुए वदन को देखकर सीता ने चिंतितस्वर से पूछा—"नाथ, कोई नई दुर्घटना तो नहीं हुई, स्वभाव-सौम्य आपका वह प्रशान्त भाव कहाँ गया।" अब रामचन्द्र जी ने उत्तर दिया—"प्रिये, वचनबद्ध सत्यसंध पिताजी आज मुझे वन को भेज रहे है, इसलिए वन जाने से पहले तुमसे विदा माँगने आया हूँ। तुम नित्य प्रात काल देवताओ की पूजा करना, पूज्य पिताजी की वंदना करके मेरी दुःखित माता को भी समझाया करना। मेरे लिए चिन्ता न करना। चौदह बरस के बाद मैं लौट ही आऊँगा। अच्छा, तो अब मैं जाता हूँ।" सीता जी ने बड़ी धीरता के साथ रामचन्द्र जी के वचन सुने, लक्ष्मण की भाँति उन्होंने वृद्ध ससुर के लिए कुछ अपशब्द न कहे। अन्य स्त्रियो के भाँति माता कैकयी के प्रति कुछ दुर्भाव भी प्रकट नहीं किये अपितु पति से केवल यही कहा— नाथ वीरो और क्षत्रियो को न फबने वाले अयशस्कर शब्दो का आप उच्चारण क्यो कर रहे है? महाराज माता-पिता बन्धु और पुत्र आदि सभी अपने अपने भाग्य के अधिकारी हैं और अपने भाग्य के अनुसार फल भोगते है पर भार्या तो पति के ही भाग्य को भोगने वाली होती है इसलिए आप के वनवास में मैं भी सहचारिणी हूँ और अपने को वन जाने के योग्य समझती हूँ स्त्रियो का तो पति ही मुख्य आधार होता है—न पिता माता पुत्र सखा और स्वयं उनकी आत्मा का भी आधार नहीं होता अत यदि आप आज वन को जाते हैं तो मैं आपके आगे चलकर मार्ग के कांटो को अपने पैरो तले रौंदकर आपका मार्ग परिष्कृत कर दूंगी। सदा

सर्वदा आपकी सेवा करके व्रत-नियम करती हुई बड़े आनन्द से मधुर सुगंध-युक्त भिन्न भिन्न वनों में आपके साथ विचरण करूँगी।

अब रामचन्द्र बोले—"प्रिये, मैं जानता हूँ कि तुम प्रेम विवश हो अवश्य वन जाने का हठ कर रही हो। मैं यह भी जानता हूँ कि तुम्हारे साथ वन मे रहने से मेरा जीवन सुखकर हो जायगा. वह वन मुझे नंदन कानन-सा प्रतीत होगा, पर प्रिये, तुमने तो कभी कठोर पृथ्वी पर भी पैर नहीं रखा फिर कंटकित और कंकड़ पूर्ण ऊबड़ खाबड़ वन-भूमि मे बिना पदत्राण के तुम कैसे चल सकोगी. दुर्गम नदी नाले, और उच्चगिरिशृंगो को तुम किस तरह पार कर सकोगी। वन में भालू, सिंह, व्याघ्र और हाथी आदि वन्यपशु ऐसा शब्द करते हैं, ऐसा चिंघारते हैं कि वीरो का भी धैर्य नष्ट हो जाता है, फिर तुम तो कुसुम से भी कोमल रमणी हो। वन में भूमि-शयन, वल्कल-वसन और कन्द-मूल फलो का भोजन करना होगा वह भोजन भी सदा नहीं मिलता। कोसों तक पानी की बूँद भी नहीं दिखाई देती। नाना प्रकार के भयकर और विषैले सर्प मार्ग मे घूमते रहते हैं। फिर वायु, वर्षा, आतप का सहना अत्यंत कठिन होता है। वन मे मनुष्यों का माँस खाने वाले राक्षस फिरते हैं जो कपट से अनेकों वेष बना लेते हैं। इसीलिए हे मृगनयनि! वन की याद आते ही बड़े बड़े वीर भी डर जाते हैं फिर तुम तो [illegible] स्वभाव वाली हो। तुम जैसी हंसगामिनी को यदि मैं वन मे ले [illegible]गा तो लोग मुझे अपयश देंगे। हे चन्द्रवदनि, वन के दुःखों [illegible] सोचकर तुम हठ का परित्याग करो और मेरी शिक्षा मानकर [illegible] सास ससुर की चरण सेवा कर अक्षय धर्म-लाभ करो।

यह सुन प्रेम [illegible] हुई अश्रुधारा से [illegible] कर तथा

धैर्य धारण कर जनकनन्दिनी बोली—'नाथ ! आपने वन के जितने भी कष्ट बताये है उन सब को सुन कर भी मै इस परिणाम पर पहुँची हूँ कि "प्रियवियोग-सम दुःख जग नाहीं" वन के बहुत से दुःख भय संताप और नानाविध क्लेश स्वामी की वियोगाग्नि के लवलेश की भी बराबरी नहीं कर सकते। हे रघुकुल-कुमुद-विधु आप के विना देव-लोक भी मुझे नरक के समान है। माता-पिता, भाई-बन्धु, सास-ससुर जितने भी स्नेह के नाते है, विना पति के स्त्री को सूर्य से भी बढ़ कर तपाने वाले है। शरीर-संपत्ति तथा प्रासाद प्रियतम के विना सब शोक-पुंज है। शरत्काल के निर्मल चन्द्रमा के समान आपके मुख को देखकर और आपके चरण-कमल की सेवा कर ये सब दुःख भी मुझे सुख प्रतीत होंगे। आपके साथ रहने पर पक्षी और मृग मेरे कुटुम्बी होंगे, वन ही नगर होगा और वल्कल रेशमी वस्त्र के समान होंगे। पर्ण-कुटी स्वर्गीय सदन के समान सुखदायी होगी। कुश और पत्तों की शय्या कोमल सेज के समान, कन्द-मूल फलों का भोजन अमृत के समान तथा उच्चगिरिशृंग अयोध्या के गगन-चुम्बी प्रासादों के समान होंगे। हे रघुवंश-शिरोमणि आपने वन के अनेक कष्ट कहे है सो हे नाथ आप ही [illegible] किया—

मैं सुकुमारि नाथ वन जोगू। तुम्हहिं उचित तप मो कहँ भोगू।

नाथ! आपके इन कठोर वचनों को सुनकर जितना कष्ट होता है उतना [illegible] रहने से भी न होगा। आपके चरण कमलों का [illegible] कठोर वचन से [illegible] प्रेम-जनित [illegible] का अनुभव [illegible] न होगा और आपने जो वन के कष्टों का सब दिखाया है [illegible] रहते [illegible] और [illegible] सकता है [illegible]

डाल सकते हैं ? स्वामिन् ! साथ ही विश्वास रखिये कि मैं आपका वियोग तो एक पल भर भी नहीं सह सकती, चौदह वर्ष का तो कहना ही क्या ? इतने पर भी यदि आप मुझे अवध मे छोड़ जायँगे तो यह निश्चित समझिये कि अवधि के पूर्व ही प्राण-पक्षी इस शरीर को छोड़ जायँगे ।"

विनय और प्रेम-सूचक अनेक बाते कह कर सीता स्वामी के कण्ठ से लग कर रोने लगी । उसके दोनों कमल-पत्र-नेत्र अश्रु-जल से ढक गये । सती-साध्वी की ऐसी अश्रुत-पूर्व दृढ़ता देखकर रामचन्द्र बोले—"देवि, तुम्हें दुखी देख कर मैं स्वर्ग की भी इच्छा नही करता, यदि तुम्हें वन-गमन मे ही सुख है तो चलो, तुम्हारे पास जो कुछ धन, आभूषण और रत्न हैं उन्हें वितरण कर चलने की तैयारी करो । मुहूर्त भर मे ही सब अमूल्य द्रव्य सखियों को वितरण कर वह निराभरणा सुन्दरी वनवास के लिए तैयार हो गई ।

भ्रातृ-भक्त लक्ष्मण भला राम को कब छोड़ने वाले थे। माता सुमित्रा ने धैर्य धारण कर उन्हें सहर्ष स्वीकृति दे दी और कहा—

अवध तहाँ जहँ राम निवासू, तहाँ दिवस जहँ भानु प्रकासू ।
जौ पै सीय राम बन जाहीं, अवध तुम्हार काज कछु नाहीं ।

कुछ ही क्षण के अनन्तर तीनों पिता के पास पहुँचे। राजा राहु-ग्रहण के समान अथवा भस्मावृत अग्नि के समान [illegible] मलिन दिखाई देते थे । अवसन्न-प्राय दिनकर के समान उनकी ज्योति क्षीण प्रतीत होती थी । वे वन-यात्रा के लिए प्रस्तुत पुत्रों का आलिंगन करने के लिए बढ़े, परन्तु मूर्छित हो गिर पड़े । राम ने उठा कर उन्हें पर्यंक पर लिटा दिया । इसके पश्चात राम और लक्ष्मण ने माता-पिता और

सुहृदो के सम्मुख जटावल्कल धारण किया। उस समय सीता के पहनने के लिए भी कैकेयी ने उसके हाथ मे चीर-वस्त्र प्रदान किये। सीता सजल-नेत्र और भीत-कण्ठ से रामचन्द्र की ओर झांक कर बोली—"हम नही जानती कि चीर-वस्त्र किस तरह पहने जाते हैं, हमे बतादो।" इस पर रामचन्द्रजी ने अपने हाथों से उसके कपडो के ऊपर ही वल्कल बांध दिये। तत्पश्चात् माता-पिता की चरण-वन्दना कर तीनो वनगमन को तैयार हुए। क्या ही कारुणिक दृश्य था! विधि की कैसी विडम्बना थी! वह राजपुत्र, एक दिन पहले जिसके राज्याभिषेक की तैयारी हो रही थी, आज वल्कल वस्त्र पहन वनगमन के लिए प्रस्तुत है! साथ मे वह राजनन्दिनी राजवधू कोमल रमणी भी है जिसने अब तक कठिन भूमि पर कभी पैर भी न रक्खा था। अयोध्या-निवासियो की आंखो से अजस्र अश्रुधारा बह रही थी। अन्त मे सुमन्त द्वारा लाये गये रथ पर वे तीनो बैठ गये। रामचन्द्र ने सुमन्त को शीघ्र रथ चलाने की आज्ञा दी।

इतने मे महाराज दशरथ का चलना आए और वे रथ के पीछे हा राम हा राम करते और [illegible]

[illegible]

से चल पड़े जो वास्तविक मार्ग न था। इस प्रकार, सबको सोते छोड़ राम निकल भागे। इधर जागने पर लोग राम को न पाकर रोते-बिलखते अपने घरों को लौट आये।

श्रीराम, लक्ष्मण और सीता चलते-चलते गंगा के किनारे शृङ्गवेरपुर पहुँचे। वहाँ का राजा गुह नाम का एक निषाद था। वह आगे बढ़कर रामचन्द्र जी को लेने आया। रामचन्द्र जी ने भी उसको आलिंगन किया और उस रात गंगा के किनारे ही ठहरे।

प्रातः होते ही राम ने सुमन्त को समझा-बुझा कर घर लौटा दिया और नौका द्वारा गंगा पार करके आगे चले।

तीनों ने कंटकाकीर्ण पथ पर पैदल-यात्रा आरम्भ की। पर थोड़ी दूर चलने के बाद ही सीता जी की गति सर्वथा मंद पड़ गई, उनके ललाट पर स्वेद की बूँदें चमकने लगीं। महाकवि तुलसीदास ने उनकी तत्कालीन दशा का क्या ही सुन्दर वर्णन किया है—

> पुर तें निकसी रघुबीर-बधू धरि धीर दए मग में डग द्वै।
> झलकीं भरि भाल कनी जल की, पुट सूखि गये मधुराधर वै।
> फिर बूझत हैं चलनो अब केतिक, पर्णकुटी करिहौ कित ह्वै।
> तिय की लखि आतुरता पिय की, अँखियाँ अति चारु चलीं जल च्वै।

सीता को इतना परिश्रान्त देख रामचन्द्र एक इंगुदी के पेड़ के नीचे विश्राम करने लगे। थोड़ी देर में सीता जी को नींद आ गई। उस तृण-शय्या-शायिनी के श्रम से म्लान और उपवास के कारण श्री-हीन म्लान्त आनन को निहार कर रामचन्द्र दैव को धिक्कारने लगे। इस तरह चलते और विश्राम करते हुए तीनों भारद्वाज मुनि के आज्ञानुसार यमुना पार कर चित्रकूट पर्वत के निकट पहुँचे। वृक्षों से हरा-भरा पर्वत को देख श्रीरामचन्द्र जी ने सीता जी से

कहा—"हे कमल-लोचने ! देखो तो ये वृक्ष फूलो से कैसे लद गये हैं. इन किंशुक वृक्षों को तो देखो रक्त-पुष्पो से ये कैसे सुहावने प्रतीत होते है । उधर देखो वे फलो के भार से वृक्ष कैसे झुक गये हैं । चित्रकूट के उस उच्च-शृंग पर शोभित उन श्यामल वृक्षो की पक्तियों को देखो । किस तरह मेघ-माला उनसे टकरा रही है । इस फल-फूल युक्त पर्वत पर कहीं किसी रमणीय समतल भूमि पर पर्णकुटी बनाकर हम आनन्द से रहेगे। भ्राता की आज्ञा पा सौमित्र ने उपयुक्त स्थान पर एक पर्णकुटी बना दी । उस रम्य-स्थली ने उनकी थकावट को दूर कर दिया । सीता वहाँ फूलो से मन बहलाती थी, मन्दाकिनी मे स्नान करती थी, हँस-सारसादि से युक्त उसके बालुकामय तट पर पानी पीते मृग-समूहों के स्वाभाविक चापल्य को देख कर मुग्ध हो जाती थी । स्वामी के साथ इस प्रकार प्रकृति की रम्य शोभा का दर्शन कर वह अयोध्या के राज्य-सुख को भी तुच्छ समझने लगी ।

इधर सुमंत्र को राम लक्ष्मण और सीता के बिना अकेला लौटा देख महाराज दशरथ पुत्र-वियोग को न सह सके, और स्वर्ग सिधार गये । भरत और शत्रुघ्न को ननिहाल से बुलाया गया । पर राम-रहित अयोध्या भ्रातृ-प्रेमी भरत के लिए नरक-तुल्य थी । पिता का क्रिया-कर्म करते ही भरत रामचन्द्र जी को लौटाने के लिए चित्रकूट पहुंचे । उन्होंने रामचन्द्र जी के सामने बहुत अनुनय-विनय किया पर पिता की आज्ञा का उल्लंघन उस पितृ-भक्त को स्वीकार न था । विवश हो कर उनकी पादुका लेकर भरत वापिस लौटे और राजसिंहासन पर पादुका रख स्वयं तापस-वेष मे अयोध्या के बाहर नन्दि-ग्राम में रहकर राजकाज चलाने लगे ।

४

भरत के लौट जाने के अनन्तर रामचन्द्र जी ने सोचा कि अयोध्या-निवासियों ने हमारे इस स्थान का पता पा लिया है, वे समय कुसमय पर हमें आकर कष्ट दिया करेंगे अतएव अब हमें इस स्थान को छोड़कर आगे चलना चाहिए । यह सोच वे तीनों वहाँ से आगे चल पड़े और घूमते-फिरते दण्डकारण्य में गोदावरी के तट पर पंचवटी में जा पहुँचे और उस निर्जन स्थान में ही पर्णकुटी बनाकर रहने लगे ।

उस स्थान पर एक ओर कमलों से भरा हुआ सरोवर था और दूसरी ओर थोड़ी दूर पर गोदावरी नदी कलकल करती हुई बह रही थी जिसके तट पर हंस-कारंडव-चक्रवाक आदि पक्षी सदा क्रीड़ा करते थे । हरिणों के समूह वहाँ हरिणियों के संग सानंद विचरते थे । पुष्प-पल्लव-युक्त वृक्षों से आच्छादित होने के कारण तथा मोरों के केकारव के कारण वह स्थान बड़ा रम्य था।

सीता वहाँ वनदेवी के सदृश विहार करने लगीं । वन-फूलों से अपने जूड़े को सजातीं और स्फटिक-शिला पर बैठ कर हार गूँथतीं । जब कभी राम आखेट से थके हुए आते तो वह उनके पैर दाब उनकी परिश्रान्ति को दूर करतीं तथा प्रात सायं स्वयं जल पात्र ले कर पर्णकुटी के आस-पास की वाटिका के वृक्षों का जल से सिंचन करतीं । वन के विचित्र पशु-पक्षी ही उसके वहाँ साथी थे । मृग उसकी पर्णकुटी के पास ही आकर दोपहरी बिताते थे । सीता उनको अपने हाथों से खिलाती थीं । जिस तरह चंचल बालक माँ को तंग करते हैं, उसी तरह वे भी सीता के साथ खेलते और उसे खिझाते थे ।

रात को जब चारु चन्द्र की चंचल किरणें जलथल में खेलतीं

ाती अवनि और अंबर-तल में स्वच्छ चाँदनी छा जाती और
्वच्छन्द सुमन्द गंधवह बहने लगता तब सीता और राम उसी
र्णकुटी में तृण-शय्या पर सुख की नींद सोते थे और वीर लक्ष्मण
हरी का काम करते थे। प्रातः वैतालिक विहंगों के कलरव को
ुनकर सीता शय्या को छोड़ती और नैत्यिक कृत्यों के अनुष्ठान में
ग जाती। कभी-कभी वहाँ उन्हें मुनियों का सत्संग प्राप्त होता,
ग्रौर तब तत्वज्ञान की कथा ग्रौर नये नये अनुपम आख्यान सुनने
ो मिलते। इस तरह उस कोमल प्रकृति की गोद में खेलती हुई,
भी मुनि-कन्याओं के साथ क्रीड़ा करती हुई सीता अयोध्या के
ाज-प्रासाद के सुख को सर्वथा विस्मरण कर चुकी थी। परन्तु
विधि तो उनका यह सुख भी न देख सकता था।

हेमन्त ऋतु में एक दिन राम और लक्ष्मण प्रातः स्नान करके
गोदावरी के तीर से लौटे ही थे इतने में संयोगवश शूर्पणखा नाम
की एक राक्षसी वहाँ उपस्थित हुई। श्रीरामचन्द्र जी की तेजस्वी
कान्ति मदन के सदृश सुन्दर स्वरूप तथा बलवान और सुगठित
शरीर को देखकर वह उन पर मोहित होगई। उसने श्री रामचन्द्र
जी से विवाह का प्रस्ताव किया। इस राक्षसी का विचित्र प्रस्ताव
सुनकर श्रीरामचन्द्र जी [illegible] उपहास करने की इच्छा से
बोले— शूर्पणखा मैं विवाहित हूँ मेरी पत्नी भी साथ है तथा
वह मुझे अत्यन्त प्रिय है परन्तु मेरे छोटे भाई लक्ष्मण की स्त्री
नहीं है, अतः तुम उसे ही अपना पति बनाओ इससे तुम्हें सौतिया-
डाह का शिकार न बनना पड़ेगा। इस पर उसने लक्ष्मण से भी
वही प्रस्ताव किया परन्तु लक्ष्मण ने भी उपहास में टाल दिया।
इस अपमान से रुष्ट हो वह पुनः श्रीराम जी के पास जाकर सीता
जी की ओर संकेत करके बोली— तुम इस कुरूपा स्त्री के लोभ में

पड़कर व्यर्थ ही मेरा अपमान कर रहे हो। अतः मैं पहले इसी के जीवन को समाप्त कर देती हूँ। यह कहकर वह सीता जी की ओर इस प्रकार झपटी, मानो आकाश मे रोहिणी पर उल्का गिरी हो। यह देख रामचन्द्र जी का संकेत पाकर लक्ष्मण ने उसे नाक-कान से विहीन कर दिया। इस पर वह बिलखती और खून टपकाती हुई पास ही रहने वाले अपने भाई खर और दूषण के पास गई। बहन के अपमान का बदला लेने के लिए खर और दूषण ने सेना-सहित रामचन्द्र जी पर आक्रमण किया। परन्तु थोड़ी देर के भयंकर युद्ध मे ही वीर रामचन्द्र के तीक्ष्ण बाणों ने खर, दूषण और उनकी समस्त सेना को धराशायी कर दिया।

खर और दूषण का सर्वनाश देखकर प्रतिहिंसा की आग में जलती हुई वह अपमानित राक्षसी अपने भाई लंका-नरेश रावण के पास गई और क्रोध कर बोली—

"करसि पान सोवसि दिन राति, सुधि न तोहि सिर पर आराति"

तेरी बहन का यह हाल हुआ है। दण्डकारण्य मे भाई खर और दूषण समेत तेरी सारी सेना का सत्यानाश होगया है, पर तुम्हे कोई खबर ही नही।" यह सुनकर रावण का क्रोधानल प्रदीप्त हो उठा, क्रोध से काँपता हुआ वह बोला—'कहो, किसने तुम्हारी यह दशा की है किसने वीर खर और दूषण की हत्या की है।" शूर्पणखा बोली—'पिता द्वारा निर्वासित अयोध्या के महाराज दशरथ के दो पुत्र तापस-वेश मे दण्डकारण्य मे रहते है। उनके साथ एक ऐसी सुन्दर रमणी है जिसके चरणो की भी तुलना तुम्हारे रनिवास की कोई सुन्दरी नहीं कर सकती। मैंने सोचा कि ऐसी अनिन्द्य-सुन्दरी त्रैलोक्य-विजयी रावण के लिए ही उपयुक्त है। अतः मैं इस इच्छा से उनके पास गई, तब छोटे भाई

लक्ष्मण ने मुझे इस तरह विरूप कर दिया। अच्छा यह होगा कि तुम उस सुन्दरी को अपने भवन में ले आओ। रामचन्द्र उसके वियोग मे सूखकर स्वयं ही मर जायँगे। इस तरह साँप भी मर जायगा, लकड़ी भी न टूटेगी।

प्रतिहिंसा और वासना से अंधा रावण तत्क्षण ही अपने पुष्पक विमान में बैठकर मारीच के पास पहुँचा, और उससे उसने अपनी नव गुप्त योजना कही। मारीच ने रावण को उस योजना से पराङ्मुख करने का परम प्रयत्न किया। परन्तु जब रावण ने उसे यह कहा कि यदि तू मेरे काम में सहायक न होगा तो पहले तेरा ही नाश करके फिर मैं अपना इष्ट सिद्ध करूँगा, तब मारीच को विवश हो उनका साथ देना पड़ा। तत्पश्चात् दोनों पुष्पक-विमान पर चढ़कर रामचन्द्र जी की पर्णकुटी के पास दण्डकारण्य पहुँचे। वहाँ मारीच सुवर्ण-मृग का वेष धर पर्णकुटी के सामने इधर-उधर इठलाता हुआ पौधों की कोमल पत्तियाँ खाने लगा। और रावण वहीं छिपकर बैठ गया। सीता जी उसे देखकर मोहित हो गई और रामचन्द्र जी से बोलीं—

आर्यपुत्र इस सुन्दर मृग को पकड़ कर मुझे ला दीजिए। अहा यह कैसा सुन्दर है, यह चित्र-विचित्र रंगवाला मृग मेरे चित्त को चुराये ले रहा है। यदि इसे जीता पकड़ सकें तब तो अत्युत्तम होगा अन्यथा इसका चर्म [illegible] हमारे [illegible] के लिए अच्छा बन [illegible]। प्राणप्रिया को प्रसन्न करने के लिए राम धनुष लेकर मृग को पकड़ने चल दिए और लक्ष्मण को सीता की रखवाली का आदेश दे गए।

रामचन्द्र [illegible] वह [illegible] पास आता और [illegible] छलाँग मारकर [illegible] जाता। रामचन्द्र जी [illegible] हुआ [illegible]

सीता जी के मुख से ऐसी बातें निकलते देख लक्ष्मण आश्चर्य-चकित होगये। वे इसे अदृष्टलिपि का विधान समझ कर बोले—"माता मैं ज्येष्ठ भ्राता की आज्ञा को विचार कर आपको अकेला न छोड़ना चाहता था. परन्तु आज आपने स्त्रीजनोचित जो वचन कहे हैं उनसे विद्ध होकर मैं जाता हूँ और आपकी मति-विभ्रमता को देखकर अनुमान करता हूँ कि शीघ्र ही कोई नवीन संकट आने वाला है।" इस प्रकार कह कर वे अपना धनुष बाण लेकर चल दिये।

ज्योंही लक्ष्मण बाहर गये त्योंही अवसर पाकर त्रिदण्डी संन्यासी का भेप धारण किये हुए रावण कुटी के द्वार पर आया।

कुटी के द्वार पर तेज पुञ्ज संन्यासी को आया देख सीता ने भक्तिपूर्वक प्रणाम किया और बैठने को आसन दिया। रावण उनके पूर्णेन्दु-सदृश मुख को देख कर आश्चर्य-चकित होकर बोला— हे रमणी रति के सदृश सौन्दर्य वाली तुम कौन हो. क्या तुम लक्ष्मी हो अथवा स्वर्गीय कोई अप्सरा हो और इस निर्जन वन में क्यों आई हो

सीता जी ने कहा महाराज मैं अयोध्या नरेश महाराज दशरथ का पुत्रवधू और मिथिला नरेश राजर्षि जनक की कन्या हूँ। कैकेयी माता के आग्रह से मेरे पति अपने पिता द्वारा चौदह वर्ष के लिए वन में निर्वासित किये गये हैं। उनका साथ देने के लिए मैं और मेरा एक देवर भी स्वेच्छा से इस वन में आये हैं अभी थोड़ी देर में मेरे पतिदेव और देवर आते होंगे तब तक आप प्रतीक्षा करें और अपना परिचय दें

रावण ने उत्तर दिया—"इस चराचर सृष्टि के जड़ पदार्थ देव असुर तथा मनुष्यादि सारे प्राणी जिसके नाम से काँपते

है, वही मैं राक्षसों का अधिपति रावण हूँ । भिक्षुक वेष धारण किये हुए तुम्हारी इस स्वर्णतनु को देख कर मोहित होरहा हूँ । इसलिए चलो मैं तुम्हें अपने महल में ले चलूँ । सारे संसार की उत्तमोत्तम और बहुमूल्य साड़ी गहने दिलाकर मैं तुम्हें पटरानी बनाऊँगा । समुद्र से परिवेष्टित, त्रिकूट पर्वत के शिखर पर स्थित सुवर्णमयी लंका के सुन्दर रमणीय उपवनों में जब तुम विहार करोगी तब स्वर्ग या अथवा इस वनवास का तुम्हें स्मरण भी न होगा ।

यह सुन सीता जी मारे क्रोध के आगबबूला हो गईं और उसे धिक्कार कर बोलीं—अरे मूर्ख पर्वत के सदृश निश्चल, इन्द्र के समान पराक्रमशाली तथा सागर के सदृश अक्षोभ राघव की मैं पतिव्रता भार्या हूँ । सिंह के सदृश गति, पराक्रम और क्रोध वाले उन महाबाहु, पूर्णचन्द्रानन दाशरथि की मैं प्रिय कन्या हूँ । अरे गीदड़, सिंह-वधू की अभिलाषा करने पर तुझे डर नहीं लगता । मूर्ख, मुझे पाने की इच्छा करना मानो भूखे सिंह के मुँह मे घुसना या मन्दर पर्वत को हाथ से उठाने का प्रयत्न करना अथवा भयङ्कर कालकूट विष को पीकर सौ वर्ष तक जीने की इच्छा करना है । भला कहाँ राघव और कहाँ तू ! अरे सिंह और लोमडी, हाथी और बिल्ली चन्दन और कीचड़ मे जितना अन्तर है उतना ही उनमें और तुझ मे है । जो तुझे प्राण प्यारे हैं तो शीघ्र यहाँ से भाग जा । एक बार शची का अपमान करके भी बचा जा सकता है, पर मेरा अपमान करके मेरे महाबली स्वामी के क्रोधानल से निस्तार पाना सहज नहीं है ।"

यह सुन कर रावण बोला—"सीता, तू मेरे पराक्रम को नहीं जानती । मैंने अपने भाई कुबेर को जीत कर उससे सुन्दर पुष्पक

विमान छीन लिया है, वायु, सूर्य तथा चन्द्रादि ग्रह-गण मेरे वश-वर्ती हैं। फिर वह तुच्छ राम किस खेत की मूली है। वह तो पिता द्वारा निर्वासित एक सामान्य मनुष्य है। भाग्योदय के इस अवसर को न त्याग।" यह सुन कर सीता के नेत्र क्रोध से लाल हो गये और अत्यंत रोषयुक्त स्वर से वह बोली—"अरे दुष्ट, वैश्रवण का भाई कहला कर पर-स्त्री पर इस प्रकार कुदृष्टि डालता है। ऐसा प्रतीत होता है शीघ्र ही तेरे इस बुरे आचरण से सारे राक्षस-कुल का नाश होगा।"

सीता के परुष वचन सुन कर रावण क्रोधोन्मत्त हो उठा। राम-लक्ष्मण कहीं शीघ्र न आजायँ, यह सोच कर उसने तुरन्त छद्म वेश का परित्याग कर दिया। फिर वह दुर्दान्त पर्वत-प्राय राक्षस सीता जी से बोला—अरी उन्मत्त सीता, अब तू मेरे पराक्रम को देख। यों कहकर वह पापात्मा देवी सीता को बल-पूर्वक उठा कर आश्रम से बाहर निकाल लाया और रथ पर बिठाकर आकाश-मार्ग से चलने लगा। सीता जी नाना प्रकार से विलाप करती हुई पुकार रही थीं—

"हा जगदीश देव रघुराया, केहि अपराध बिसारेहु दाया
आरतिहरन सरन सुखदायक हा रघुकुल-सरोज-दिननायक
हा लछमन तुम्हार नहिं दोसा, सो फल पायउँ कीन्हेउँ रोसा
ये वेर्दा मन जो कुछ रहेऊ सो विधि आज मोहि दुख देऊ
विपति मोर को प्रभुहि सुनावा पुरोडास चह रासभ खावा

नारी-कंठ-विनिःसृत आर्तनाद को सुन कर दशरथ के सखा पलित-केश वृद्ध जटायु ने जब आकाश-पथ से सीता सहित रावण को जाते देखा तो उसे ललकार कहा—अरे दुष्ट ठहर मैं अभी सती पर किये गये अपमान का तुझे मजा चखाता हूँ। उस

से पहले ही प्राणान्त कर दूँ। फिर यह विचार कर कि 'जीवन्नरो भद्र शतानि पश्यति' वह आत्महत्या न करती। आशा होती कदाचित् रामचन्द्र जी इस समय में भी आ जायँ। परन्तु यदि वे न पहुँचे तो उनके चरण-कमल को हृदयासन में धारण कर परमधाम सिधारने का सीता जी ने निश्चय कर लिया।

लंका में पहुँच कर हनुमान ने इधर-उधर सब जगह सीता की खोज प्रारम्भ की। रात्रि के समय रावण के अन्तःपुर में सोती हुई सब स्त्रियों को वे देख गये, पर कहीं श्री रामचन्द्र जी द्वारा बताई गई लक्षणों वाली देवी सीता के दर्शन न हुए। वे सोचने लगे कि क्या समुद्र को लाँघने का परिश्रम व्यर्थ ही जायगा। कहीं रावण से त्रस्त होकर सीता जी ने अपने प्राण तो नहीं त्याग दिये। फिर सोचा कि एक बार और यत्न करूँ। उन्होंने समस्त लंका को छान डाला, अंत में उन्हें अशोक वन दिखाई पड़ा। वहाँ पर उन्हें अनेक प्रकार के वृक्ष दिखाई दिये। उस वन में उत्तम सुगन्धित जल से पूर्ण नाना प्रकार के वापी, कूप तथा तड़ाग उन्होंने देखे। जिनकी पाल मुक्ता-प्रवाल युक्त थी। पानी के नीचे फर्श स्फटिक का बना हुआ था। चंपक, उद्दालक, निचुलार और कोविदार के पेड़ निरंतर पुष्पों को खिलाकर उस वन को सुन्दर कर रहे थे। इधर से देखते-देखते वे एक कृत्रिम पर्वत के पास पहुँचे जिसमें अनेक तृण उगे थे। हनुमानजी को इस गिरि शृंग पर एक गगन चुम्बी शिंशपा वृक्ष दिखाई दिया। इसी पर चढ़ कर वे चारों ओर देखने लगे तब उन्हें पास ही अशोक के एक वृक्ष के नीचे भयंकर राक्षसियों से घिरी मलिन वस्त्र पहने पीत और दुबली, दीर्घ श्वास लेती हुई एक देवी दिखाई दी। उनके बाल चारों ओर मलिन भार पीछे पृथ्वी पर

अपनी थोड़ी सी सेना-सहित रहता था। रामचन्द्र जी ने बालि को मार कर उसे किष्किंधा का राज्य दिला देने का प्रण किया और उसने सीता जी की खोज कराने का वचन दिया। सुग्रीव ने राम के भरोसे अपनी छोटी सी सेना लेकर ही किष्किन्धा पर चढ़ाई कर दी और जब सुग्रीव और बाली परस्पर द्वन्द्वयुद्ध कर रहे थे तब रामचन्द्र जी ने एक तीक्ष्ण बाण द्वारा बाली का काम तमाम कर दिया। सुग्रीव किष्किंधा का राजा हुआ और उसने अपनी सारी सेना सीता जी को खोजने के लिए भेज दी। उनमें से जाम्बवन्त, अंगद, हनुमान आदि अपने साथियों सहित ढूँढते-ढूँढते दक्षिण दिशा के समुद्र के तट पर पहुँचे वहाँ से आगे अकेले महावीर हनुमान ही समुद्र को तैर कर लंका में पहुँचे।

स्वप्न में दिखाई देने वाले यमराज के दूतों के समान भयंकर राक्षसियों द्वारा घिरी हुई सीता देवी को प्राकृतिक सौंदर्य से भरपूर अशोक-वन में रहते-रहते दस मास व्यतीत हो गये थे। राम के विरह में उनका शरीर कंकाल-मात्र रह गया था। धूलि धूसरित वस्त्रों में उनका सहज-सौन्दर्य राहुग्रसित चन्द्रमा की समता धारण कर रहा था। रात-दिन राम-नाम का जाप ही उनका कर्म रह गया था। परन्तु इतने लम्बे समय तक पति और देवर का कोई समाचार न पाकर उन्होंने सोचा कि शायद वे इस लोक में न रहे हों। इस अनिष्ट विचार के आते ही वे सिहर उठीं। पर फिर सोचा कि यदि वे जीवित होते तो क्या मेरी खोज खबर न लेते। कभी वह स्वप्न देखतीं कि राम उसके उद्धार के लिए लंका पर चढ़ आये हैं परन्तु फिर वह स्वप्न निराशा के घने अंधकार में विलीन हो जाता। एक वर्ष की अवधि में केवल दो मास का समय शेष है। वह सोचती तो क्या अवधि समाप्ति

फिर राक्षसियों को देखकर बोला—"देखो इसे इस प्रकार का इतना जर्जर कर दो जिससे इसका यह सारा कोरा अभिमान नष्ट हो जाय।" इतने में रावण की धान्यमालिनी नामक सुन्दरी भी रावण से बोली—"महाराज, आप व्यर्थ ही इस मानुषी के पीछे पड़े हैं, थोड़े दिन में अपने आप यह मान जायगी। चलिए अब वहाँ से चलें।" यों कहकर वह रावण का हाथ पकड़ कर उसे अपने साथ ले वहाँ से चल दी।

रावण के चले जाने पर राक्षसियों ने सीता जी को सताना शुरू किया। परन्तु शीघ्र त्रिजटा और विभीषण की स्त्री सरमा वाटिका-विहार के बहाने से सब राक्षसियों को लेकर अलग चली गई। सीता जी शून्य-दृष्टि से पृथ्वी की ओर देखती हुई अनवरत अश्रुधारा बहाने लगीं।

राक्षसियों को दूर गया देख अवसर पाकर हनुमान जी उसी वृक्ष के ऊपर पहुँच गए और वहाँ बैठकर सीता जी का ध्यान अपनी ओर आकर्षित करने के लिए रामचन्द्र जी की कीर्ति का वर्णन करने लगे। यह सुनकर चकित हो सीता जी वृक्ष की ओर ऊपर देखने लगीं तो उन्होंने हनुमान को वहाँ बैठे देखा। वे उसे देख बहुत विस्मित हुई और सोचने लगीं क्या मैं स्वप्न देख रही हूँ। फिर यह समझकर कि कदाचित् यह भी छद्मवेशी राक्षस ही हो वे मूर्च्छित हो गिर पड़ीं। यह देख हनुमान उनके पास की शाखा पर आये और बोले—देवि मैं श्रीरामचन्द्र जी का दूत हूँ और उनके आदेश से आपको खोजता हुआ यहाँ पहुँचा हूँ। हे वैदेही, प्रभु श्रीरामचन्द्र जी सकुशल हैं। उन्होंने आपकी कुशल पूछी है और उनके अनुज तेजस्वी लक्ष्मण ने आपको प्रणाम कहा है। यों कहकर उनको प्रणाम करने के लिए आगे बढ़े तो

को पूर्ण करने का वचन दिया, और उनको साष्टांग प्रणाम करके उनसे विदा माँगने लगे। हनुमान जी को जाते देख सीता जी का दुःख फिर उमड़ आया और फिर वे हनुमान से कहने लगीं— "हनुमान मेरी ओर से आर्यपुत्र को प्रणाम कहकर मुझे शीघ्र छुड़ाने की प्रार्थना करना।"

हनुमान उन्हें दुबारा प्रणाम कर और किसी प्रकार की चिंता न करने का आश्वासन देकर वहाँ से विदा हुए।

तत्पश्चात् लंका में इधर-उधर परिभ्रमण कर हनुमान समुद्र तीर पर पहुँचे और फिर तैर कर दूसरी ओर जहाँ जाम्बवंत अंगद आदि वीर उनकी प्रतीक्षा कर रहे थे, वहाँ पहुँच गये। हनुमान के हर्षोत्फुल्ल मुख को देखकर सब को विश्वास हो गया कि वे सीता जी का पता लगा लाये हैं और उनसे सारा वृत्तान्त सुनकर प्रसन्न होते हुए वे सब वहाँ से विदा हो ऋष्यमूक पर्वत पर पहुँचे।

हनुमान जी ने श्रीरामचन्द्र जी को सीता जी का दिया हुआ चूड़ामणि देकर सब वृत्तान्त कह सुनाया। सीता जी की कारुणिक दशा सुनकर रामचन्द्र जी की आँखों में आँसू आ गये। आँसुओं को पोंछकर उन्होंने सुग्रीव को शीघ्र ही सैन्य-संगठन [illegible] कर प्रयाण करने के लिए कहा। कुछ ही दिनों में [illegible] समुद्र के किनारे पहुँच गये और समुद्र के पार [illegible] का उपाय सोचने लगे।

इधर जब लंका निवासियों को यह समाचार मिला [illegible] से घबरा [illegible] ने रावण को समझाया [illegible] रावण के भाई विभीषण ने भी रावण को इस पाप का प्रायश्चित्त करने को कहा पर अभिमानी रावण ने विभीषण की [illegible] करके अपमानपूर्वक लंका से निकाल दिया। अपमानित विभीषण [illegible] के पास चले

आओ। आज्ञा पाते ही विभीषण सीता जी को पैदल ही सबके सामने श्रीराम जी के पास ले आये।

श्रीराम जी की उस समय की आज्ञा तथा उनकी भाषण शैली और मुख की मुद्रा को देखकर सब विस्मित हो रहे थे। इतने दिन बाद प्रियतमा को पाने पर भी श्रीराम जी के मुख पर प्रसन्नता की झलक न थी। अपितु दैन्य और रोष की लहरियाँ उमड़ रही थीं। यह देखकर सीता जी को अत्यन्त विषाद और भय हुआ। वे लज्जा और विनय से हाथ जोड़कर रामचन्द्र जी के पास खड़ी हो गईं।

तब श्री रामचन्द्र अपने हार्दिक भावों को प्रकट करते हुए बोले—"सीते! आज रणभूमि में शत्रु का सर्वथा नाश कर मैं तुम्हें बन्दीगृह से छुड़ाकर यहाँ लाया हूँ। शत्रु का और अपने अपमान का मैंने एक साथ ही नाश कर दिया है। शूर पुरुष का जो कर्तव्य था वही मैंने किया है। दुराचारी पर पुरुष बलात् तुम्हें हर ले गया था। यह जो कलंक मेरे सिर पर लगा था उसे मैंने यथाशक्ति प्रक्षालित कर दिया है। दूसरों द्वारा अपमान किये जाने पर भी जो निर्वीर्य मनुष्य चुप रहता है [illegible] नहीं करता उस क्षुद्र का जीवन ही व्यर्थ है। [illegible]

इस दारुण आदेश को सुनकर लक्ष्मण जी ने कुपित और दीन दृष्टि से रामचन्द्र जी की ओर देखा। रामचन्द्र जी ने संकेत द्वारा अनुमति दे दी। सब उपस्थित पुरुष अवाक् थे। लक्ष्मण ने चंदन की चिता तैयार कर उसमें अग्नि-प्रदान किया। रामचन्द्र के क्रोध और अटल गांभीर्य को देख किसी को कुछ कहने का साहस न होता था। चिता के प्रज्वलित होते ही अधोवदन सीताजी श्रीरामचन्द्र जी की और चिता की परिक्रमा कर हाथ जोड़ कहने लगी—

जो मन-कर्म-वचन उर माहीं, तजि रघुवीर आन गति नाहीं।
तौ कृसानु सबकी गति जाना, मो कहँ होहु श्रीखंड समाना।*

तत्पश्चात् निर्भय हृदय से साध्वी सीता ने प्रज्वलित चिता मे प्रवेश किया। रामचन्द्र निर्निमेष नयनों से सीता के इस अलौकिक कृत्य को देखने लगे। विभीषण सुग्रीव आदि उपस्थित व्यक्तियो के मुख से 'हाय-हाय' शब्द निकल पड़ा। कोई आँख ऐसी न थी, जो अश्रुवर्षा न कर रही हो। परन्तु एक क्षण मे ही सब विस्मित हो गये। सती के वचनों के अनुसार उसका स्पर्श पाकर दारुण पावक सचमुच ही श्रीखंड के समान शीतल हो गया। वह प्रज्वलित अग्नि सती के केश तक को न जला सकी। सीताजी की पवित्रता का प्रमाण जगत भर मे प्रकट हो गया। कुछ क्षण आश्चर्य-चकित रहकर रामचन्द्र जी ने कहा—"प्रिये! तुम नहीं समझ सकती कि जब मैं तुम्हें कठोर वचन कह रहा था, तब मेरे हृदय पर उन वचनो का कैसा आघात हो रहा था। जब लक्ष्मण ने

*मनसि वचसि काये, जागरे स्वप्नसर्गे,
यदि मम पति भावो राघवादन्यपुंसि।
तदिह दह ममाङ्गं पावनं पावकेदं,
सुकृत-दुरितभाजा, त्वं हि कर्मैकसाक्षी॥

तुम्हारे लिए चंदन की चिता प्रज्वलित की थी तब मेरे हृदय मे उससे भी अधिक दारुण ज्वाला जल रही थी। पर उसको दमन कर यह जानते हुए भी कि तुम शुद्ध पवित्र हो, तुम्हारे चिता प्रवेश मे मैंने केवल इसलिए स्वीकृति दी थी कि तुम्हारी शुद्धता का प्रमाण सारे लोक को मिल जाय। मै राजा हूँ, मेरा हृदय प्रजा-रंजन के लिए बाध्य है, मैं लोकमत की अवहेलना नही कर सकता था, अतः जनता को तुम्हारी शुद्धता का प्रमाण देना मेरे लिए आवश्यक था। अब तुम तपे हुए सुवर्ण की भॉति शुद्ध हो मध्याह्न के प्रदीप्त दिनकर की भॉति पवित्र हो, अतः अब तुम्हें स्वीकृत कर मैं अपना अहोभाग्य समझता हूँ। यह सुन कर सीता ने श्री रामचन्द्र जी की पदधूलि लेकर मस्तक पर लगाई और उनके कहे हुए समस्त कठोर वचनो को वह भूल गई। सीता और रामचन्द्र के मधुर-मिलन पर सब उपस्थित लोग प्रसन्न हो जय ध्वनि करने लगे।

इसके बाद शुभ मुहूर्त्त मे विभीषण को लका का राजतिलक दे, रामचन्द्र सदल बल अयोध्या की ओर चले।

६

प्रजारंजन ही रामचन्द्र के शासन का एक-मात्र मूल मत्र था। प्रजा के कष्टों को तथा राजा या राजकर्मचारियो के प्रति प्रजा के क्या विचार हैं यह जानने के लिए उन्होंने गुप्तचर नियत किये हुए थे। वे नहीं चाहते थे कि उनके किसी कार्य से जनता-जनार्दन असन्तुष्ट रहे। अतएव आज हजारों वर्षों के पश्चात् भी उनके राज्य को स्मरण किया जाता है और जिस शासन में प्रजा पूर्णतया सन्तुष्ट हो उसे 'राम-राज्य' कहा जाता है।

इधर राजमहिषी सीता गर्भवती हुई। माताओं की मनोकामना पूर्ण होने को आई। उनका आनन्द अवर्णनीय था। श्रीराम भी

सीता जी को सन्तुष्ट रखने के लिए सदा तत्पर रहते थे। उनके गर्भ दोहद को—उनकी इच्छाओं को—पूर्ण करने में लगे रहते थे। एक दिन सीता जी ने रामचन्द्र जी से कहा—"आर्यपुत्र मेरी इच्छा है कि गंगा जी के तटपर मुनियों के आश्रमों में रहने वाली देवियों के दर्शन करूँ, और मुनि कन्याओं को अनमोल अलङ्कार और वस्त्र दे आऊँ।"

श्री रामचन्द्र जी ने कहा—"यह क्या कठिन है। मैं अभी इसका प्रबन्ध किए देता हूँ। कल ही तुम तमसा नदी के तट पर वाल्मीकि ऋषि के आश्रम मे जाकर तपोवन दर्शन कर आना। राजकार्य के आधिक्य के कारण कदाचित मैं तुम्हारे साथ न जा सकूँ, परन्तु चिरंजीव लक्ष्मण तुम्हारे साथ जायँगे।

सीता जी यह सुनकर बड़ी प्रसन्न हुईं, वे ऋषि-पत्नियों और मुनि-कन्याओं के लिए अनेक प्रकार का सामान एकत्र करने लगीं। उन्होंने स्वप्न में भी न सोचा था कि उनका यह तपोवन-गमन पति-गृह से सदा के लिए गमन होगा।

श्रीरामचन्द्र जी अन्त पुर से निकल नित्य नियमानुसार राज-सभा में जाकर बैठे। और नगर का समाचार लाने वाले गुप्तचरों से पूछताछ करने लगे। दुर्मुख ने बहुत डरते हुए और सङ्कोच करते हुए कहा—'महाराज, आपके विषय में जनता में कोई अपवाद नहीं है, परन्तु राजमहिषी इतने दिन तक एकाकिनी व्यभिचारी रावण के यहाँ बंदी रूप मे रही हैं और उन्हें आपने पुन. अंगीकार कर लिया है इस पर कुछ पर निंदकों का क्षोभ अवश्य है। उनका कथन है कि जब परगृहवासिनी पत्नी को महाराज ने स्वयं स्वीकार कर लिया है तो यदि ऐसी ही घटना हम में से किसी के यहाँ उपस्थित हो, तो अपराधिनी नारी को दण्ड देना कठिन होगा।"

दुर्मुख के मुँह से ये दुर्वचन सुन श्रीरामचन्द्र जी का हृदय दु:खावेग से एकदम फट गया. तप्त अश्रुधारा से उनका वक्षस्थल भीग गया। उनके हृदय में भीषण अंतर्द्वंद्व होने लगा। एक ओर प्रजा-रंजन का कठिन व्रत था और दूसरी ओर प्राणों से भी अधिक प्यारी, पुण्यमयी, गृह-लक्ष्मी, पतिव्रता, राजरानी सीता का परित्याग। एक ओर कठोर कर्तव्य की चट्टान थी दूसरी ओर प्रेम की अगाध नदी। रामचन्द्र किंकर्तव्यविमूढ़ थे। उन्होंने अपने भाइयों से परामर्श करना चाहा। भरत, लक्ष्मण और शत्रुघ्न को बुलाया गया। गहन चिंता-सागर में अवगाहन करते हुए अधोवदन रामचन्द्र को देख तीनों भाई आश्चर्यचकित रह गये। बहुत देर तक उनको इसी प्रकार बैठा देख लक्ष्मण ने साहस करके पूछा—"प्रभो, किस गहन चिंता ने आपकी शान्ति का अपहरण कर लिया है।"

लक्ष्मण के वचन सुनकर रामचन्द्र वहाँ पर तीनों भाइयों को खड़ा देख सजग हो कर बोले—"भाइयो, गुप्तचरों द्वारा पता लगा है कि परगृह में रही हुई सीता को अपनाये जाने के कारण जनता असंतुष्ट है। वे राजा के इस कृत्य को घृणित समझते हैं। उनका कथन है कि मैंने रघुवंश की विमल कीर्त्ति को कलंकित कर दिया है। यद्यपि सीता कठोर अग्नि परीक्षा दे चुकी हैं, सब के सामने अपनी पवित्रता सिद्ध करने पर ही मैं उन्हें अपने घर लाया था, मैं जानता हूँ कि उस पवित्रता की मूर्ति को अपवित्रता स्पर्श भी नहीं कर सकती तथापि जनता जिस राजा की अपकीर्ति करती है उसका अवश्य अध:पात होता है। प्रजा को प्रसन्न रखना ही राजा का कर्तव्य है अतएव मुझे प्राणों से भी अधिक प्रियतमा सीता का परित्याग करना पड़ रहा है इसलिए लक्ष्मण तुम कल प्रात

रथ को तपोवन की ओर बढ़ाये लिए जा रहे थे। उसमें सीता जी तथा लक्ष्मण बैठे हुए थे। भोली-भाली सीता जी आनन्द में मग्न थीं उनके पास अनेक सुन्दर वस्त्र और आभूषण थे। ऋषि-पत्नियों को अलंकार देने की सदिच्छा से उनके मुख मण्डल पर प्रसन्नता की छाया तथा उत्साह की अद्भुत छटा दिखाई देती थी। वे लक्ष्मण जी से अनेक प्रश्न कर रही थीं—"मुनि स्त्रियाँ इन वस्त्रों को पाकर प्रसन्न होंगी या नहीं, उन्होंने ऐसे सुन्दर वस्त्र पहले कभी देखे होंगे अथवा नहीं?" ये प्रश्न सुन लक्ष्मण के हृदय में असह्य वेदना होती थी। वे सोचते थे कि देखो सिर पर मँडराती हुई भयंकर आपत्ति का इस सती-साध्वी को तनिक भी ज्ञान नहीं है। रह-रह कर उनकी आँखों से आँसू टपकना चाहते थे, उनका मुख भी श्री हीन था।

यह देख सीता जी ने पूछा—'लक्ष्मण, आज तुम इतने उदास क्यों हो। तुम्हारी आँखें लाल क्यों हो रही हैं। मैं समझती हूँ कि तुम अपने बड़े भाई से एक दिन के लिए भी कभी पृथक् नहीं हुए अतएव तुम्हें उनका वियोग कदाचित् असह्य प्रतीत होता हो परन्तु हमें मुनियों के आश्रम में केवल एक ही रात रहना है। [illegible]

[illegible]

देख वे घबड़ा गई और बोली—"लक्ष्मण मेरे भी हृदय की ..
विचित्र दशा हो रही है, समझ नहीं पड़ता मुझे ये अपशकुन क्यों
हो रहे हैं, मैं तो एक धार्मिक कृत्य के लिये जा रही हूँ।"

इतने में रथ भागीरथी के तट पर जा पहुँचा। भागीरथी को
देखते ही लक्ष्मण की आँखों से दूसरी भागीरथी के समान अश्रुधार
उमड़ उठी। यह देख सीता जी ने अत्यधिक चिंतित होकर
पूछा—"वत्स लक्ष्मण, आज तुम दिन भर से उदास हो, मेरे बार
बार पूछने पर भी कारण नहीं बताते, बताओ तो वत्स, तुम्हारे इस
प्रकार क्षुब्ध होने का क्या कारण है।" लक्ष्मण ने अब भी अपना
मौन भंग न किया, और अश्रुधारा को पोंछ कर वे नाव का प्रबन्ध
करने चले गये। निषादराज गुह ने लक्ष्मण और सीता को देखकर
शीघ्र ही नौका का प्रबन्ध करा दिया। सुमंत्र को रथ लेकर वहीं
खड़ा रहने की आज्ञा देकर लक्ष्मण सीता-सहित नौका पर सवार
हो गये।

मल्लाहों ने शीघ्र ही नौका को दूसरे किनारे पर लगा दिया
लक्ष्मण ने सीता जी को नौका से नीचे उतारा। सीता अभी दो
पग आगे बढ़ी ही थीं तब लक्ष्मण कम्पित-कंठ से कातर हो
बोले— "देवी वैदेही" इसके बाद वे कुछ कह न सके, उनका कंठ
भर आया। लक्ष्मण के इस कातर स्वर को सुनकर सीता जी एक
दम मौन एवं स्तम्भित सी रह गई। फिर आँचल से लक्ष्मण के
आँसुओं को पोंछ कर बोलीं— वत्स, तुमसे कितनी बार पूछा है
पर तुम अपनी कातरता का कारण ही नहीं कहते कहो मुझे बड़ी
चिंता हो रही है, कहो कहो।"

लक्ष्मण ने बड़े साहस से कहा—"देवि प्रजावत्सल राजा
रामचन्द्र ने लोकापवाद के डर से आपको यहाँ महर्षि वाल्मीकि

के आश्रम के निकट वन में छोड़ देने की मुझे कठोर आज्ञा दी है।" इतना कहते ही लक्ष्मण का गला रुँध गया।

वज्र के समान कठोर वचन सुनकर विच्छिन्न कदली वृक्ष की भाँति सीता जी सहसा मूर्च्छित होकर गिर पड़ी। परन्तु शीघ्र ही पुण्य-तोया भागीरथी के शीतल कणयुक्त मंद-मंद समीर द्वारा संज्ञा-युक्त होकर वे विलाप करने लगी—"दुर्दैव, क्या अब भी तू मेरा पीछा नहीं छोड़ता। लक्ष्मण, क्या विधाता ने मुझे आजीवन दुःख भोगने के लिए ही उत्पन्न किया था? मैंने पूर्व-जन्म में कौन-सा ऐसा पाप किया था। सचमुच ही मैंने किसी सुखी दंपति का विच्छेद करवाया होगा। लक्ष्मण, मैंने तुम्हारे सामने अग्निमें प्रवेश कर अपनी पवित्रताको सिद्ध कर दिया था, क्या फिर भी न्याय-शील महाराज मेरा त्याग कर रहे हैं। मैं इन वन के दुःखों को बहुत भोग चुकी। पर आर्यपुत्र के संग रहने से वनवास मुझे किंचिन्मात्र भी कष्टकर नहीं प्रतीत हुआ था और उनके आश्रय ही के कारण प्रत्येक आश्रम में मेरा आदर सत्कार होता था। पर अब इस दशा में मुझे कौन आश्रय देगा। यदि कोई पुण्यात्मा आश्रय दे भी देगा तो मैं आर्यपुत्र के बिना कैसे दिन काट सकूँगी। अब मेरे दुःख को कौन सुनेगा। [illegible] महात्मा पति द्वारा निर्वासन का कारण पूछेंगे तो क्या मैं किसी से यह कह सकूँगी कि आर्यपुत्र ने [illegible] मेरा परित्याग कर दिया है। [illegible] सौमित्र अच्छा [illegible] होता है कि तुम्हारे सामने [illegible] में आश्रय लूँ परन्तु हाय इस समय मेरे उदर में उस निष्ठुर का सन्तान—पवित्र रघुकुल की [illegible] सन्तान—है अतएव मैं आत्म-हत्या करने में भी असमर्थ हूँ।

"प्यारे लक्ष्मण, तुम क्यों रोते हो। दुःखिनी सीता के भाग्य में जो कुछ लिखा है, उसे भोगने दो। जाओ, तुम अपना ... करो। सब सासुओं से हाथ जोड़कर प्रणाम कहना और ... धार्मिक राजा को मेरा संदेश सुना देना—'महाराज, सबके ... अग्नि में प्रवेश कर मैं अपने को निर्दोष सिद्ध कर चुकी हूँ। ... भी भली-भाँति जानते हैं कि मेरी आप पर पूर्ण भक्ति है। ... केवल प्रजा की परितुष्टि के लिए लोकापवाद के भय से ... निरपराधिनी समझते हुए भी आपने बाध्य होकर निर्वासन ... दिया है तो राज्य से निर्वासित कर देने पर भी मुझे हृदय ... निर्वासित न करें और यह तो मैं स्वप्न में भी कल्पना नहीं ... सकती कि आप अपने उदार हृदय में मुझे कभी भी अन्... समझते होंगे। राजा के नाते प्रजा की परितुष्टि आपका धर्म है ... अतएव उस धर्म के पालन के लिए मुझे जो दण्ड मिला है, ... मुझे भी मान्य है, क्योंकि स्त्रियों के लिए तो पति ही मुख्य देव... है, पति ही उनका बन्धु और वही उनका गुरु है। इस नाते ... मेरा भी यही कर्तव्य है कि मैं आपकी विमल कीर्ति को कलङ्कि... न होने दूँ। अब मुझे इस शरीर की भी सर्वथा चिंता नहीं है ... सन्तान की उत्पत्ति के अनन्तर मैं प्रत्येक जन्म में आपके स... पति पाने और इस जन्म के समान आपका वियोग न होने ... लिए कठिन तपस्या करूँगी।' — वत्स लक्ष्मण, यदि फिर ... नारी-जन्म हुआ तो तुम जैसा ही स्नेही देवर पाने की प्रार्थ... करूँगी, जाओ लक्ष्मण, तुम जाओ आर्यपुत्र अवश्य मेरे विर... में कातर हो रहे होंगे। मेरी बहन श्रुतकीर्त्ति, माँडवी और उर्मि... अवश्य ही चिंतित होंगी। तुमको मेरी शपथ, तुम कभी आर्यपुत्र का संग न छोड़ना। जब कभी वे मेरे लिए विलाप करके कर्त...

ने शिथिलता दिखायें, तब तुम उन्हें ढाढस बँधाते रहना। जाओ भैया, अब जाओ, राजा की आज्ञा और कर्त्तव्य का पालन करो।"

अब लक्ष्मण तप्त अश्रुओं से उनके चरण-कमलों को प्रक्षालन कर तथा उनकी परिक्रमा करके विदा हो नौका में जा बैठे। थोड़ी ही देर में वे गंगा को पार करके दूसरे तट पर जा पहुँचे और फिर रथ में बैठकर उदास मन से अयोध्या की ओर चल दिये। रथ में बैठ लक्ष्मण देवी सीता की ओर एकटक देख रहे थे और सीता जी भी निरंतर निर्निमेष नयनों से तब तक उसी ओर ही देखती रहीं जब तक रथ उनकी दृष्टि-पथ को अतिक्रम नहीं कर गया।

जब रथ का दिखना बंद होगया, तब सीता जी को चारों ओर अंधकार ही अंधकार दिखाई दिया। अन्त में सहसा "महाराज आपने मुझ निरपराधिनी को इस बीहड़ वन में क्यों छोड़ दिया" कह कर वे फूट फूटकर रोने लगीं। उनका वह करुण क्रंदन उस निर्जन वन में गूँजने लगा। उस समय महर्षि वाल्मीकि के शिष्य उस निर्जन वन में समिधा एकत्र करने के लिए आये हुए थे। वे इस हृदयबेधी करुण-क्रन्दन को सुनकर द्रवित हो गये। उन्होंने जाकर गुरु को सूचना दी कि एक सम्भ्रान्त महिला एकाकिनी बैठी रुदन कर रही है। यह बात सुन महर्षि वाल्मीकि तुरन्त गंगा तट पर पहुँचे और देवी सीता को सम्बोधन करके बोले "बेटी, तुम विषाद मत करो। मैं जानता हूँ कि तुम्हारी जैसी पतिव्रता और पवित्रता की मूर्ति को रामचन्द्र ने केवल प्रजा के हित के लिए [illegible] परित्याग किया है [illegible] रामचन्द्र ने तुमको परित्याग कर [illegible] [illegible] चलो तुम मेरे आश्रम

मे चलो, तुम्हारे चरण रज से मेरा आश्रम भी पवित्र हो जायेगा। तपोवन-वासिनी ऋषि-पत्नियाँ अपनी कन्या की तरह तुम्हारा पालन करेंगी।"

वाल्मीकि ऋषि के ये सान्त्वना भरे स्निग्ध वचन सुनकर सीता जी ने उठकर उन्हे प्रणाम किया। और ऋषि ने उन्हें आशीर्वाद दिया—"पुत्री, वीरप्रसविनी होओ, और पुन: अपने पति की कृपा भाजन बनो।" फिर ऋषि की सहायता से उस ऊबड़-खाबड़ मार्ग को पार करती हुई सीता उनके आश्रम मे पहुँची। वहाँ महर्षि आश्रम वासिनी ऋषि-पत्नियो से सीता का परिचय कराया और सीता से कहा—बेटी अब से—

> सास आदि की सेवा का सुख वृद्धाओं मे पाना।
> होंगी सखियाँ और बहिन ये मुनि-कन्याएँ नाना।

७

महर्षि वाल्मीकि के आश्रम मे ही देवी सीता के दो यम पुत्र उत्पन्न हुए। महर्षि वाल्मीकि ने यथाविधि उनके जात-कर्मादि संस्कार कर बड़े का नाम कुश और छोटे का नाम लव रखा। वनवासिनी सीता जी इन दो शिशु-रत्नो को पाकर अपना सब दु भूल गई और बड़े यत्न से उनका लालन-पालन करने लगी। त वन दोनो शिशुओ की तोतली बोली से गूँज उठा। ऋषिपत्नि उनके बालचापल्य को देखकर पुन मातृसुख अनुभव करने लगीं

जब वे कुछ बड़े हुए तब उनकी शिक्षा का भार महर्षि वाल्मी पर ही पड़ा। महर्षि ने अन्य ऋषिकुमारो के समान उन्हें स शास्त्रो की शिक्षा दी। फिर धनु सचालन, अश्वारोहण आ क्षत्रियोचित शिक्षा भी वह स्वय ही उन्हे देने लगे। धीरे-धीरे मह ने उन्हे सब विद्याओ मे प्रवीण कर दिया।

वाल्मीकि मुनि ने श्रीराम के उदारचरित्र का वर्णन करते हुए रामायण नामक एक महाकाव्य लिखा था। जो इस लोक में उस आदि-कवि का पहला लौकिक काव्य था। वह लय-संयुक्त था और वीणा पर गाने योग्य था। महर्षि वाल्मीकि इन दोनों शिष्यों को अब उस रामायण का गान करना सिखाने लगे। दोनों तापस वेश-धारी राजकुमार जब वीणा के सुर में सुर मिलाकर मधुर कंठ से रामचरित गान करते तो तपोवनवासी मुग्ध हो जाते, वन के पशु-पक्षी भी जड़वत् होकर उसे सुनने लगते। परन्तु राजकुमार इससे अनभिज्ञ थे कि वे अपने ही पूज्य, पर निष्ठुर पिता का उदार चरित्र गा रहे हैं। वे जानते थे कि सूर्यवंशी रामचन्द्र जैसा प्रतापशाली और प्रजावत्सल राजा त्रैलोक्य में नहीं है परन्तु वे उसी प्रताप-शाली राजा के पुत्र हैं यह उन्हें ज्ञात न था। दोनों पुत्रों के वीणा से भी अधिक मधुर स्वर से सीता जी जब अपने पितृकुल और पतिकुल की गौरवकीर्त्ति सुनतीं अपने पति की वीरता के अद्भुत कृत्यों को और अपनी वनवास की करुण पर सुखदगाथा को श्रवण करतीं तो अनिर्वचनीय आनन्द का अनुभव करतीं। उनके नेत्रों में प्रेमाश्रु भर आते और वे अपने को धन्य समझतीं

दोनों कुमारों ने इसी प्रकार शिक्षा पाते हुए बालकपन से किशोरावस्था में पदार्पण किया। अब मुनि को केवल यह चिन्ता थी कि किस प्रकार सीता [illegible] और किस प्रकार ये राजकुमार अपने पैतृक अधिकार को प्राप्त कर सकें

महर्षि को यह सुयोग शीघ्र ही प्राप्त हो गया। कुलगुरु वसिष्ठ के आदेश से रामचन्द्र जी ने अश्वमेध यज्ञ करने का निश्चय किया। उस यज्ञ के लिए उन्होंने चारों दिशाओं से बड़े-बड़े ऋषियों को निमन्त्रित किया और देश देशान्तर के राजाओं को

बुलाया। किष्किन्धा से सुग्रीव, सुदूर लंका से विभीषण आदि राजा अपने सामन्तों सहित आ उपस्थित हुए। एक दूत महर्षि वाल्मीकि के आश्रम में भी पहुँचा। उसने शिष्यों सहित महर्षि वाल्मीकि को यज्ञ में पधारने के लिए निमंत्रण दिया। महर्षि ने मन में विचारा कि यह अच्छा अवसर है। मैं कुश और लव को शिष्य-रूप में साथ ले जाऊँगा। दोनों कुमार इधर-उधर परिभ्रमण कर सुमधुर स्वर में राम कथा गायेंगे। इस तरह से वे निश्चय ही रामचन्द्र के ध्यान को आकर्षित कर सकेंगे। परन्तु प्रश्न यह था कि क्या अभिमानिनी सीता अपने पुत्रों को उस निर्दय पति के यज्ञ में जाने देगी जिसने निरपराधिनी गर्भवती को कपट-रूप से बीहड़ वन में छुड़वा दिया था। अतः महर्षि ने सीता की आज्ञा ले लेनी उचित समझी। तब महर्षि ने सीता जी को अश्वमेध यज्ञ का समाचार दिया और कुमारों को अपने साथ ले जाने को पूछा तो उन्होंने कहा—कुमार आपके हैं आप उन्हें जहाँ चाहें ले जा सकते हैं।

इधर यह समाचार सुनकर कुश और लव उस रघुवंशी के दर्शन पाने के लिए उत्सुक थे जिनका यशोगान करते करते उनकी जिह्वा परिश्रान्त न होती थी। उधर माता जी के मन में बड़ी चिन्ता उत्पन्न हुई। वसन्त का सुगन्धित पवन, ग्रीष्म के लंबे दिन, पावस का घनघोर गर्जन और शरद् की सुखद चाँदनी तथा शिशिर-हेमन्त की लंबी लंबी रातें क्रम से आतीं और चली जातीं परन्तु इतने वर्ष तक सपनों में भी उन्हें कभी आमंत्रण न आया था। इतने वर्ष के अनन्तर रामचन्द्र जी की ओर से वे निराश हो गई थीं। सन्तान के लालन-पालन में लगे रहने के कारण उन्हें और किसी विचार का अवकाश भी न मिलता था। निराशा ने

उनका हृदय पक्का कर दिया था। परन्तु आज अश्वमेध यज्ञ का नाम सुनते ही उनके हृदय मे बड़ी ठेस लगी। आज उनका स्त्रीत्व पुनः जागरित हो उठा। वे जानती थीं कि वैदिक नियमानुसार यज्ञ आदि शुभ कार्य पत्नी के अभाव मे नहीं हो सकते। तो क्या रामचन्द्र जी ने उनके अभाव मे यज्ञ करने के लिए पुनर्विवाह कर लिया है। क्या राज्य से निर्वासित करने के साथ उन्हे हृदय से भी निर्वासित कर दिया है। क्या प्रजा-रंजन केवल व्याज-मात्र था। फिर कौन ऐसी सौभाग्यवती स्त्री है जो यज्ञ के समय अयोध्या-नरेश से अर्द्धासन पायगी। यह चिंता और ये विचार सीता के अन्तस्तल को मथन करने लगे। आज फिर कई वर्ष पूर्व की घटनाएँ उनके दृष्टि-पथ मे नृत्य करने लगीं।

इतने ही मे ऋषि-पत्नियों ने अयोध्या से आये हुए दूत से पूछा कि यज्ञानुष्ठान मे बिना पत्नी के साथ रहे तो सिद्धि प्राप्त नहीं होती तो क्या तुम्हारे महाराज ने इस कार्य के लिए दूसरा विवाह किया है?

राजदूत ने कहा—' नहीं नहीं ऐसा तो हमारे महाराज अगले जन्म मे भी नहीं कर सकते। कुलगुरु वसिष्ठ ने बहुत कहा परन्तु इस बात मे उन्होंने कुलगुरु का आग्रह भी अवहेलना कर दी और स्पष्ट कह दिया कि केवल प्रजारंजन के लिए मैंने निरपराधिनी राजरानी को अपने राज्य से निर्वासित किया था। परन्तु इतने वर्षों के अनन्तर भी हृदय मे उनका स्थान एक क्षण के लिए भी नहीं भुला सका हूँ। यदि यज्ञ करना आवश्यक है तो उनकी स्वर्ण मूर्ति ही यज्ञ मे अर्द्धासन पर बैठेगी। अन्य कोई स्त्री इस स्थान को नहीं पा सकती।

यह सुनकर वनवासिनी सीता के हृदय मे भी सौभाग्य का अपूर्व गर्व जागरित हो उठा। वह दुखी और निर्वासित होते हुए

भी अपने नारी-जन्म को धन्य समझने लगीं। और उन्होंने निश्चय किया कि अपनी आयु का अवशिष्ट काल इस शुभ-संवाद को स्मृति को हृदय मे रखकर ही आनन्द से व्यतीत कर दूँगी।

कुश और लव सहित वाल्मीकि ऋषि यज्ञ-भूमि मे उपस्थित हुए। भरत जी ने अत्यन्त प्रेम और नम्रता से उनका स्वागत किया और उनको रम्य पर्णकुटी मे ठहराया। ऋषि ने कुश और लव को स्थान स्थान पर—राज प्रासादो मे, ऋषियों के आश्रमो मे मे, हाट मे, राजमार्ग मे—वीणा-मृदंग सहित रामायण-गान करने की आज्ञा दी। पर साथ ही यह आदेश दिया कि यदि कोई तुम्हे पुरस्कार दे तो स्वीकृत न करना। परिचय पूछे तो केवल यही कहना कि हम लोग वाल्मीकि के शिष्य हैं।

जब वे सुन्दर राजपुत्र अपने मधुर कंठ से उस अद्भुत काव्य को गाने लगते तो सहस्रो पुरुषो की भीड़ एकत्र हो जाती और सब मोहित हो उनकी भूरि-भूरि प्रशंसा करते। धीरे-धीरे उनकी कीर्त्ति राज-प्रासाद तक पहुँची। श्री रामचन्द्र जी ने उन बालकों को बुलाकर यज्ञ-मंडप मे ऋषियो के सामने उस काव्य को गाने के लिए आदेश दिया। उस दिन उन बालको ने आदिकाण्ड के २० सर्ग सुनाये। उन्हे सुनकर श्री रामचन्द्र इतने प्रसन्न हुए कि उन्होंने उन बालको को अठारह सहस्र मुहरे देने के लिए भरत जी को आज्ञा दी। जब भरत वह पुरस्कार उन्हें देने लगे तो ऋषि कुमारो ने हाथ जोडकर कहा—'महाराज हम तो आश्रमवासी कन्दमूल-फल खाकर रहने वाले तपस्वी बालक है। इस सुवर्ण को लेकर हम क्या करेंगे। महाराज का गुण-कीर्तन महाराज के सामने ही करने का सौभाग्य पाकर हम कृत-कृत्य हो गये हैं यही हमारा यथेष्ट पुरस्कार है।" यह उत्तर सुन सारी सभा विस्मित हो

गई। उन बालकों का स्वरूप देखकर तो और भी अधिक आश्चर्य चकित हो रहे थे। वे तो सर्वथा रामचन्द्र जी के प्रतिबिम्ब थे। भेद केवल इतना था कि उनके सिर पर जटाएँ थीं तथा शरीर पर वल्कल थे. पर श्री रामचन्द्र जी के देह मे राजसी वस्त्र थे। राजमाताएँ तो उन कोमल कुमारो को देखकर मोहित हो रही थीं पर जब कोई उनसे कौतूहल वश परिचय पूँछता तो वे यही कह देते कि हम महर्षि वाल्मीकि के शिष्य हैं।

जब कई दिनों तक उन कुमारो के गायन होते रहे तब एक दिन महाराज रामचन्द्र ने महर्षि वाल्मीकि को बुलाकर उन बालकों का परिचय पूछा। महर्षि ने सीता के परित्याग से लेकर अब तक की सारी घटनाओ का उल्लेख कर कहा—"महाराज, ये दोनों कुमार आपके ही है। यथाशक्ति मैं अब तक इन्हें शिक्षा देता रहा हूँ, पर अब आप इनको ग्रहण करे। साथ ही उस वनवासिनी धर्मशीला पत्नी को भी पुन अपनाएँ।

महर्षि वाल्मीकि के वचन सुनकर रामचन्द्र बोले— मैं सीता को सर्वथा पाप रहित और पवित्र समझता हूँ। परन्तु फिर भी जनता की परितुष्टि के लिए मैंने उसे अग्निपरीक्षा देने को कहा था। और उसके अनतर ही मै उसे स्वीकार कर यहाँ लाया था। पर जब अयोध्या मे फिर भी उसके विषय मे लोकापवाद सुना तब मुझे बाध्य होकर उस निरपराधिनी का परित्याग करना पडा। मुझे भली-भाँति ज्ञात है कि ये दोनों भी मेरे है परन्तु अब भी प्रजा को विश्वास दिलाने के लिए सीता को फिर अपनी शुद्धता सिद्ध करनी होगी। यदि प्रजा के प्रतिनिधि उसकी शुद्धता को स्वीकृत कर लेंगे तो मेरे हर्ष की सीमा न रहेगी उस पर मेरा विश्वास तथा प्रेम और भी बढ जायगा।

यह सुनकर महर्षि वाल्मीकि बोले—"अच्छा है, सीता जी आपकी आज्ञानुसार आकर सभा में अपनी शुद्धता सिद्ध करेंगी। स्त्रियों के लिए तो पति ही मुख्य देवता है अतः वे आपकी अवहेलना नहीं कर सकतीं।

तदनुसार सीता जी को वाल्मीकि-आश्रम से लाने के लिए विश्वस्त दूत भेजे गये। उनके आने पर यज्ञमण्डप में सभा सजायी गई। श्रीरामचन्द्र जी ने यज्ञ के प्रीत्यर्थ वहाँ पर उपस्थित सभी ऋषियों को इस अवसर पर विशेष तौर से बुलाया। कुलगुरु वसिष्ठ, विश्वामित्र, जाबाली, कश्यप, अगस्त्य, दुर्वासा, भृगु, मार्कण्डेय, पुलस्त्य, मुद्गल, गार्ग्य, च्यवन, शतानन्द, नारद आदि महर्षि सभा में उपस्थित थे। प्रजा के प्रतिनिधि भी निमन्त्रित किये गये थे। सब आकर यथास्थान बैठ गये। सबके हृदय में यह जानने की उत्सुकता और उत्कंठा थी—'अब क्या होगा।' पाषाण के समान सभा अविचल थी। उस समय महर्षि वाल्मीकि के पीछे-पीछे पग रखती हुई, हाथ जोड़े हुए आँखों से अविरल अश्रुधारा बहाती हुई, कृशवदना, काषायवसना सीता जी सभा के मध्य में आईं। उन्हें देखकर सभाजनों के मुख से 'धन्य धन्य' की शान्त ध्वनि निकल पड़ी। श्रीरामचन्द्र और सीता जी का अपूर्व प्रेम और उनके तत्कालीन विचित्र दृश्य का प्रतिबिम्ब उन दोनों की ओर देखने वालों के अन्तःकरण पर भी पड़ा। तब महर्षि वाल्मीकि सभा के मध्य में खड़े होकर [illegible] और गिरा से बोले—'दाशरथे रामचन्द्र! तुमने सब से उत्तम पतिव्रता और धर्मशीला पत्नी सीता का लोकापवाद के कारण परित्याग किया है, तभी से ये मेरे आश्रम में रहती हैं। तुम जानते हो मैं प्रचेतस का आठवाँ पुत्र हूँ। मैंने आजतक कभी

अनन्य संभाषण नहीं किया है। मेरा विश्वास है विदेह-राज की कन्या सर्वथा पाप-रहित और शुद्ध है। मेरा यह कथन सर्वथा सत्य है, यदि यह असत्य हो तो मेरी अनेक वर्षों की तपस्या फल-रहित हो जावेगी। अब वे तुम्हारे समाधान के लिए अपनी शुद्धता स्वयं सिद्ध करेंगी।"

तदनन्तर रामचन्द्र जी बोले—"महर्षे, मैं जानता हूँ कि सीता सर्वथा पाप-रहित है, फिर आपके वचन पर संदेह भी नहीं किया जा सकता। परन्तु राजा प्रजा के अधीन है। यदि प्रजा सीता की शुद्धता को स्वीकृत कर लेती है तो मैं अपने को धन्य समझूँगा।"

पति के मुख से यह वचन सुन तपस्वी-जनोचित काषाय वस्त्र-धारिणी सीता आगे बढ़ीं, उस समय उनकी दृष्टि निरंतर पृथ्वी की ओर लगी हुई थी। तब उन्होंने हाथ जोड़ कर स्थिर होकर कहा—"यदि मैंने आज दिन तक आर्यपुत्र राघव के अतिरिक्त अन्य किसी पुरुष के विषय में मन से विचार तक न किया हो, तो हे माँ वसुधरे! तुम मुझे अपनी शान्तिमयी गोद में शीघ्र ही स्थान दो। यदि मन वचन और कर्म से मैंने पति-देवता से ही प्रेम किया हो और यदि मेरा कथन सत्य हो तो हे पृथिवी माता! तुम मुझे अवश्य अपने में स्थान दोगी।" इस प्रकार सीता जी के शपथ लेते ही पृथ्वी विदीर्ण हो गई और वह सदा सर्वदा के लिए उसमें अन्तर्हित हो गई। उस आश्चर्य को देख सब विस्मित रह गए और क्षण भर के अनन्तर सबके मुँह से यही निकला—'धन्य आदर्श सती'

गान्धारी

१

पञ्जाब के पश्चिम में सिन्धु नदी के पार गान्धार नाम का एक विस्तीर्ण प्रान्त था। विक्रम संवत् से कोई ३१५० वर्ष पहले वहाँ अनेक प्रसिद्ध क्षत्रिय कुल निवास करते थे। उनमें से एक कुल महाराज नग्नजित का था। देवकी-पुत्र भगवान कृष्ण ने इसी नग्नजित् के पुत्रों को जीत कर वन्दीगृह में पड़े अनेक राजाओं को मुक्त किया था। इसी नग्नजित् की कन्या नाग्नजिती अथवा सुकेशी को भूतपावन गोविन्द ने वरा था। फिर एक स्वयंवर में उपस्थित वृष्णी-वीर श्री वासुदेव ने यहीं पर काश्मीर के राजा दामोदर का वध किया था। उन दिनों इसी गान्धार देश के एक भाग का राजा सुबल था। सुबल की कई कन्याएँ थीं और गान्धारी उन सब में बड़ी थी।

२

उन दिनों कुरु-जांगल राज्य की राजधानी हस्तिनापुर थी। कुरु-कुल में उत्पन्न होने से इस राज्य के राजा कौरव कहाते थे। महाराज शन्तनु का देहान्त हो चुका था। शन्तनु के ज्येष्ठ-पुत्र देवव्रत अथवा भीष्म ने आजन्म ब्रह्मचारी रहने की घोर प्रतिज्ञा कर ली थी। भीष्म का यह व्रत अटूट था, अभेद्य था। भीष्म के छोटे भाई चित्राङ्गद और विचित्रवीर्य इह-लोक से गमन कर चुके थे। उनके तीन पुत्र थे—धृतराष्ट्र पाण्डु और विदुर। धृतराष्ट्र उन सब में से ज्येष्ठ तथा बलवान परन्तु चक्षुहीन था। इन बालकों की कुमारावस्था में राज्य का सारा प्रबन्ध अर्थशास्त्र-निष्णात शान्तनव भीष्म जी माता सत्यवती की अनुमति से करते थे। भीष्म के राज्य-शासन में धर्मचक्र प्रवृत्त था। वे तीनों कुमार भीष्म से पुत्रवत्-पालित हो यौवन को प्राप्त हुए।

गाङ्गेय भीष्म धर्मनिष्ठ विदुर से बोले—'हमारा कुल श्रेष्ठ गुणों के लिए सर्वत्र प्रसिद्ध हो चुका है इन्हीं कारणों से यह समुद्र के समान बढ़ रहा है। इसकी वृद्धि का अब पुनः समय आ गया है। सुनते हैं सुबल की कन्या गान्धारी रूपवती और बन्धु-बान्धव-युक्ता है सुबल भी क्षत्रियों में श्रेष्ठ हैं अतः धृतराष्ट्र के साथ गान्धारी का सम्बन्ध योग्य है।' भीष्म जी के वचन सुनकर विदुर ने कहा महाराज आप हमारे पिता आप ही माता और आप परम गुरु हैं अतएव जो हमारा हितकर हो उसका सम्पादन आप स्वयं करें उपर्युक्त वार्तालाप के अनन्तर कुरु-वृद्ध भीष्म ने अपने दूत गान्धार को भेजे वहाँ पहुँच कर उन्होंने भीष्म का अभिप्राय सुबल से कहा।

८

बारह वर्ष के वनवास के पश्चात् एक वर्ष का अज्ञात-वास समाप्त हो चुका था। पाञ्चाल देशाधिपति वृद्ध राजा द्रुपद ने सन्धि के निमित्त जो दूत नागपुर भेजे थे, वे असफल हो कर लौट आए थे। भारत के क्षात्र-समुदाय मे एक क्षोभ उत्पन्न हो रहा था। कोई राजा पाण्डवों का पक्ष लेने के लिए समुद्यत था, तो कोई दुर्योधन की ओर से संग्राम-क्षेत्र मे उतरने के लिए अग्रसर था। इन तैयारियों के मध्य में अर्जुन के प्यारे सखा वृष्णीवीर दाशार्ह कृष्ण ने युधिष्ठिर से कहा कि एक बार उन्हें भी हस्तिनापुर मे हो आना चाहिए। संसार ऐसा न कहे कि कृष्ण के होते हुए भी भारत मे क्षत्रिय-कुलान्तकारी युद्ध हो गया। युधिष्ठिर ने इस विषय मे अनुमति दे दी।

यदु-प्रवीर अपने बन्धु सात्यकि और चुनी हुई सेना के साथ दूत बन कर हस्तिनापुर को चल पडे। वे धृतराष्ट्र की राजसभा में खडे थे। उनकी वाग्मिता को सुनने के लिए अनेक ऋषिगण भी अपने पार्वत्य आश्रमों से उतर कर उस पार्थिव-समिति मे उपस्थित हुए थे। दुःशासन ने जब देखा कि राजा धृतराष्ट्र, भीष्म द्रोण और कृप आदि सब विचारवान् महानुभाव श्रीकृष्ण की यथार्थ वक्तृता के सामने झुक रहे हैं तो उसने दुर्योधन से कहा कि ये वृद्ध हमें और तुम्हें पाण्डवों को सौंप देंगे। भाई के यह वचन सुन कर मानावेश से आविष्ट मूर्ख दुर्योधन शिष्टता और मर्यादा का परित्याग करके उस सभा से प्रस्थान कर गया।

ऐसी परिस्थिति मे पुष्कर-लोचन दाशार्ह धृतराष्ट्र से बोले—"राजन्! अपने कुल का अन्त न करो और इस दुष्टात्मा पुत्र को त्याग दो, इसी मे तुम्हारा कल्याण है।"

९

देवकी-नन्दन श्रीकृष्ण का वचन सुनकर धृतराष्ट्र ने विदुर से कहा—"हे सर्व-धर्म के जानने वाले विदुर, जाओ और दीर्घ-दर्शिनी गान्धारी को सभा मे ले आओ। उस के साथ दुर्मति दुर्योधन को समझाने का मैं फिर से प्रयत्न करूँगा, यदि उस दुरात्मा को समझाने मे वह भी विफल-मनोरथ हुई, तो हम कृष्ण के वचनों को मान लेंगे। सम्भव है वह देवी लोभ-परिवेष्टित पुत्र को समझा सके, और दुर्योधन द्वारा उत्पन्न की गई यह घोर विपत्ति हमारे सिर से टल जाए।"

राजा की आज्ञा पाकर विदुर देवी गान्धारी को सभा में ले आए। उस देवी ने सभा मे आकर जो वचन कहे हैं, आर्येतिहास मे वे चिरस्मरणीय रहेंगे। सहस्रों वर्षों के वीत जाने पर भी उन शब्दों से उतना ही तेज, विचार और निर्भीकता झलकती है, जितनी कि उस अलौकिक दिन दिखाई दी थी, जिस दिन वे शब्द उस सभा मे पहली वार सुने गये थे। कितनी देवियाँ इस ससार मे हो चुकी है, जिन्होंने सहस्रो वीरो के सामने अपने पति की भूल का गान्धारी जैसा उज्ज्वल चित्र खींचा हो। यह वात और भी ओजस्विनी हो जाती है जब हम यह देखते हैं कि ये वचन उसी वीरा नारी ने कहे है कि जो असाधारण पतिपरायणा थी।

सर्ववेदवित् कृष्णद्वैपायन की अनुपम रचना में इस प्रकार वे शब्द लिखे गए हैं, आगे हम उन्हीं का भाषा देते हैं।

१०

गांधारी के सभा-स्थान पर वैठ जाने के अनन्तर धृतराष्ट्र ने कहा—"गान्धारि! यह तेरा पुत्र दुरात्मा और आज्ञा का अति

क्रमण करने वाला है। ऐश्वर्य के लोभ से न केवल ऐश्वर्य को ही प्रत्युत जीवन को भी खो बैठेगा। अशिष्टों के समान मर्यादा रहित होकर और मित्रों के वचनों का उल्लंघन कर के वह मूढ़ सभा में से चला गया है।"

भर्ता के वचन सुन, अपने कुल का महान् कल्याण चाहती हुई वह यशस्विनी राजपुत्री बोली—"राज्य के लोभी, दीन पुत्र को शीघ्र यहाँ बुलाओ। वह धर्म और अर्थ का लोप करने वाला अशिष्ट राज्य को कैसे प्राप्त कर सकता था परन्तु सर्वथा नम्रता-रहित होने पर भी उसने राज्य को पाया। ऐ धृतराष्ट्र! पुत्र स्नेही तुम ही सबसे अधिक निन्दनीय हो, जो उसकी पापमयी वृत्ति को जानते हुए भी उसी की बुद्धि के पीछे चलते हो। वह काम और क्रोध के वश में होकर लोभ में स्थिर है। आज तुम उसे बलपूर्वक भी अपने वश में नहीं ला सकते। उस मूढ़, लोभी दुरात्मा पुत्र को राज्य देने का फल भोगते हो। राजन्! अपने ही बान्धवों में भेद को देख कर कैसे उपेक्षा कर रहे हो। अपने जनों से जुदा हो जाने पर शत्रु तुम्हारा धन और देश छीन लेंगे। अपने जनों से आई हुई जो आपदाएँ साम और दान से दूर हो सकती हैं उनके लिए दण्ड का प्रयोग करना अच्छा नहीं है।

जब महारानी इतना कह चुकीं तब धृतराष्ट्र की आज्ञा और पति-परायणा गान्धारी के वचनों के अनुकूल विदुर जी ने अमर्षण दुर्योधन को सभा में पुनः लाने का प्रयत्न किया। माता के वचनों को सुनने का आकांक्षी वह सभा में आया पर क्रोध से उसके नेत्र लाल हो रहे थे और वह पन्नग के समान श्वास ले रहा था। उस समय उसे निन्दित वचन कहते हुए कुल-कल्याण के लिए गान्धारी बोली—

रथी द्रोण ने तुम्हे कहा है कि कृष्ण और अर्जुन अजेय हैं, यह सत्य है। इस महाबाहु कृष्ण की मति लो, प्रसन्न हुआ हुआ यह केशव हमारे और पाण्डवो के सुख का उपाय करेगा। जो नर विद्वान्, प्राज्ञ इष्ट-मित्रो की आज्ञा मे नहीं चलता, वह शत्रुओ को प्रसन्न करने वाला होता है। वत्स! युद्ध मे न कल्याण है और न धर्म तथा अर्थ। युद्ध मे सदा विजय भी नहीं मिलती, अतः युद्ध का ध्यान मत करो।

हे शत्रुदमन, भीष्म और तुम्हारे पिता ने इसी भेदभाव के डर से पांडवो को न्याय से प्राप्य हिस्सा उन्हे दे दिया था। तुम जो इस समय शूर पांडवो के बल से शत्रु से हीन पृथिवी का निष्कटक राज्य कर रहे हो, सो उसी का फल है। इस लिए यदि तुम मंत्रियों और भाइयो के साथ सुख से राज्य-सुख भोगना चाहते हो तो पांडवो को आधा राज्य दे दो। आधा राज्य पाडवों का न्याय से प्राप्य अंश है। और तुम्हारे लिए आधा राज्य पर्याप्त है। उससे तुम सानन्द भाई, मन्त्री और भृत्यादि के साथ अपनी जीविका चला सकते हो। इस प्रकार हितैषियो का कहना मानने से संसार मे तुम्हारा यश विस्तृत होगा। पाण्डवो के साथ तुम्हे विग्रह महान् सुख से गिरा देगा तेरह वर्ष पाण्डवो को कष्ट देकर तुमने उनका बड़ा अपकार किया है। उस अपकार के कारण पाडवो के हृदय मे जो प्रतिहिंसा की आग धधक रही है उसे अब शान्त करो। यही बुद्धिमत्ता है। पार्थ अपना भाग चाहते है तेरा भाग नहीं मांगते।

दृढ-क्रोधी सूतपुत्र और तेरा भाई दुःशासन तेरी इच्छाएँ पूर्ण नहीं कर सकेंगे। भीष्म द्रोण कृप, कर्ण भीमसेन धनञ्जय और धृष्टद्युम्न आदि वीर महारथी जब क्रुद्ध होकर परस्पर युद्ध करेंगे तब घोर लोकक्षय होगा। हे तात क्रोधवश होकर कुरु-वंश का

असाध्य नहीं है, परन्तु क्रोध-जन्य इस निन्दित नीति को मैं अपनाना नहीं चाहता।" यह सुन धृतराष्ट्र अत्यन्त लज्जित हुआ। उसने दुष्ट-मति दुर्योधन को समझाना चाहा, पर वह न माना। तब यदुवीर कृष्ण अपना बल दिखाकर उसके मनोरथ को असफल कर वहाँ से विदा हुए। वे कर्ण को अपने साथ रथ पर बिठा लाए। हस्तिनापुर से बाहर आकर भगवान् कृष्ण बोले—"हे कर्ण! भीष्म, द्रोण और कृप को कह देना कि समय मंगलकारी है, अतः कुरुक्षेत्र में वे युद्ध के लिए तैयार रहें। जब तुम उस महान् संग्राम में सफेद घोड़े वाले, कृष्ण से चलाये गये रथ को देखोगे जिस पर कि महावीर अर्जुन ऐन्द्र, आग्नेय और वायव्य अस्त्रों को चलायेगा, जब गाण्डीव की ध्वनि बिजली की कड़क के समान करेगी, तब कृत, त्रेता और द्वापर के पुरातन युद्ध भी फीके पड़ जायेंगे और न कभी ऐसा युद्ध होगा।"

पहुँचे। वे सूचना देकर सीधे महाराज धृतराष्ट्र के भवन मे प्रविष्ट हुए। वेद-वेत्ता महर्षि व्यास पहले ही से वहाँ उपस्थित थे। कृष्ण जी ने व्यास और धृतराष्ट्र के पैर छूकर गान्धारी को प्रणाम किया। शिष्टाचारोचित अन्य बातों के पश्चात् कृष्ण बोले—"राजन्! भूत और भविष्य की गति आपसे तिरोहित नहीं है। पाण्डवों ने युद्ध के निवारण के लिए अनेक यत्न किए थे। मै भी इसीलिए दूत बन कर आपकी सभा में आया था, परन्तु आपके पुत्र-स्नेह ने कोई सफलता न होने दी। आपने भीष्म, द्रोण और कृप आदि की बात पर कोई ध्यान न दिया। काल के प्रभाव से सब की बुद्धि नष्ट हो जाती है। आप बुद्धिमान होते हुए भी उसी भावी के प्रभाव से मोहित होकर सदा सन्धि के प्रस्ताव की उपेक्षा करते रहे। आप चाहते तो यह सग्राम न होता। महाराज! इस अनर्थ के लिए पाण्डव दोषी नहीं हैं। अत: आप को और देवी गान्धारी को पाण्डवों का अनिष्ट न सोचना चाहिए। यदि आप दोनो ने पाण्डवों का अनिष्ट सोचा तो इस कौरव-कुल का अब अन्त हो जायगा। हे महाबाहो! आप भली प्रकार जानते है कि धर्ममूर्ति युधिष्ठिर स्वभाव से ही आप दोनो पर प्रेम और भक्ति रखते हैं। अपकारी शत्रुओं का अन्त करके भी वे सुखी नहीं हैं। आप की और माता गान्धारी की दशा का ध्यान करके उनका हृदय शोकाग्नि मे अहर्निश जलता रहता है। वे लज्जा के मारे आपके सम्मुख नहीं आ सकते और आप दोनो को पुत्र शोक अभितप्त हतबुद्धि और व्यथित जानकर वे अपने को धिक्कार रहे हैं।

१३

तत्पश्चात् मधुसूदन पुत्र-शोक-पीडिता गान्धारी से बोले— "हे पतिव्रता शिरोमणि मेरी बातों को ध्यान से सुनो। मै जानत

१४

कृष्ण जी के चले जाने के कुछ काल उपरान्त राजा धृतराष्ट्र गान्धारी, कुन्ती और कौरवों की सब स्त्रियो को साथ लेकर रथों पर सवार हो युद्धक्षेत्र की ओर चल पड़े। उस काल का उन देवियो के विलाप का वर्णन नहीं किया जा सकता। जो राज-रानियाँ कभी घरों से बाहर न निकलती थी, वही आज मुक्त-केशा एक-एक धोती पहने रोती हुई जा रही थी। विधाता के सामने कोई पल नहीं मार सकता। उन देवियो के करुण-रुदन ने भयकर प्रलय काल का दृश्य उपस्थित कर दिया था।

मार्ग मे ही धृतराष्ट्र की पाण्डवों और श्रीकृष्ण से भेंट हुई। राजा धृतराष्ट्र ने उदासीन भाव से युधिष्ठिर को गले लगाया। तत्पश्चात् वे भीम को खोजने लगे। शोक-रूपी पवन से परिवर्द्धित धृतराष्ट्र के कोप की अग्नि भीमसेन-रूपी वन के दग्ध करने को उद्यत सी प्रतीत होती थी। कृष्ण जी इस भाव को ताड गए। भीमसेन ज्यो ही आगे बढ़ने लगा त्योंही श्रीकृष्ण ने दोनो हाथो से उसको खींच लिया। दुर्योधन ने भीम की एक लौह-मूर्ति तैयार करा रखी थी। वह उस मूर्ति के साथ गदा-युद्ध किया करता था। अनागत काल को जानने वाले भगवान मधुसूदन ने इसी काल को जानकर वह मूर्ति अपने पास रख ली थी। उन्होंने वही मूर्ति धृतराष्ट्र के आगे कर दी। धृतराष्ट्र ने उस लौह भीम को वास्तविक भीम जान कर छाती से लगा कर दोनो हाथो से इतने बल से दबाया कि वह मूर्ति चूर-चूर हो गई राजा धृतराष्ट्र का बल सुविख्यात था फिर भी लौह-मूर्ति को चूर्ण करने पर उनके मुख से रक्त जाने लगा और धृतराष्ट्र मूर्छित हो गये। सञ्जय ने उनको थाम लिया और चेतना आने के बाद कहा— महाराज यह

सुलग रही है। संसार जानता है कि गदा-युद्ध मे भीम की अपेक्षा दुर्योधन बहुत अधिक निपुण था, यदि इस प्रकार नीति-विरुद्ध कार्य न होता तो वीर दुर्योधन सहज मे ही न मारा जाता?

तब भयभीत भीम विनय-पूर्वक बोला—"माता! यह सत्य है कि मैंने शूरोचित कर्म नहीं किया। दुर्योधन बड़ा बली था। उसका मारना सरल न था और उसके जीते जी हमारा राज्य अकटंक नहीं था, अत मैंने ऐसा कर्म किया। हे माता! जब दुर्योधन ने द्रौपदी को कौरव-सभा मे दुर्वचन कहे थे, और जाँघ ठोककर निंद्य संकेत किया था और दु शासन ने उस एक-वसना का चीर-हरण करना चाहा था, तब क्रोध मे आकर मैंने प्रतिज्ञा की थी, और उस प्रतिज्ञा का पालन मेरे लिए आवश्यक था। इसमें पहल आपके पुत्र ने ही की थी। वह तो वनवास में भी हमे कष्ट पर कष्ट देता रहा इन्हीं कारणो से कुपित हो मैंने उसे मार डाला। अब आप उसके लिए मुझे क्षमा करें।"

गान्धारी और भीम की ये बातें होती रहीं। अन्त मे विह्वला गान्धारी अत्यन्न करुणा-पूर्ण स्वर मे बोली—

"हे पाडवो! तुमने वृद्ध महाराज और मुझपर अणुमात्र भी दया न दिखाई हमारे सभी पुत्रो को तुमने क्यो मार डाला। उन सब मे से तुम्हारी दृष्टि मे जो एक कम अपराधी था उसे तो तुम छोड़ देते। राजहीन और पुत्र-शोक से सतप्त हम दोनो स्त्री-पुरुष उसी एक को देखकर अपने शेष दिन अति-वाहित करते वही एक हमारा सहारा—अन्धो का आश्रय होता। इस धर्म का विचार करके यदि तुम हमारे एक पुत्र को भी छोड देते तो हमारा पुत्र-शोक कुछ न्यून हो जाता।"

पुन पुत्र पौत्रो की मृत्यु से परम व्यथित महारानी ने भीम

घोर दु:ख में पड़ी हूँ। मैं मानती हूँ कि यह लोकविनाश इस काल में होना ही था, यह तो अवश्यम्भावी था। जब कृष्ण अपने दूत-कार्य मे सिद्धि-सम्पादन किये विना ही लौट गये थे, तब विदुर ने मुझ से कहा था कि घोर लोक-क्षय अब अनिवार्य है। हुआ भी वस्तुतः ऐसा ही। अब समर मे मारे गये लोगो के लिए शोक करना वृथा है। पुत्री! तुमसे मैं अधिक दुखी हूँ। यह कौरवकुल का संहार मेरे ही कारण हुआ है।"

इतना कहकर पतिव्रता और महाभागा गान्धारी चुप हो गई। व्यास की कृपा से उसे दिव्य चक्षु प्राप्त हो गये। वहीं खड़ी-खड़ी वह उस समर-भूमि का दृश्य देखने लगी। वह रण-क्षेत्र अस्थि, केश, वसा और शोणित के प्रवाह से व्याप्त हो रहा था। चारों ओर लाखों लाशें पड़ी थी। मांसाहारी पशु-पक्षी इधर उधर घूम और उड़ रहे थे। कहीं कटे हुए रुंड थे, तो कहीं मुंड दिखाई दे रहे थे।

तत्पश्चात् व्यास जी की अनुमति से वे सब लोग शीघ्र ही समर-क्षेत्र मे पहुँच गए। गान्धारी के हृदय में शोक की पीड़ा ने एक बार पुन तीव्रता धारण की। सहस्रो सुकुमारी स्त्रियाँ अपने वन्धु-बान्धवों की लाशो के पास खडी विलाप कर रही थी। गान्धारी भी दुर्योधन की लाश के पास पहुँच गई। वहाँ पहुँच कर शोक-सतप्ता गान्धारी कटे हुए कदली वृक्ष के समान पृथिवी पर गिर पडी। गान्धारी का करुण-क्रन्दन असह्य था। उसकी अनवरत अश्रुधारा से दुर्योधन का वक्ष स्थल भीग गया।

समीप-स्थित श्रीकृष्ण से गान्धारी ने कहा—हे वार्ष्णेय! कुलान्तकारी इस घोर युद्ध के उपस्थित होने पर राजा दुर्योधन हाथ जोड कर मुझ से बोला कि हे माता बन्धुओ के इस महा-युद्ध मे आप मेरी जय का आशीर्वाद दे। मैं अपने ऊपर आने
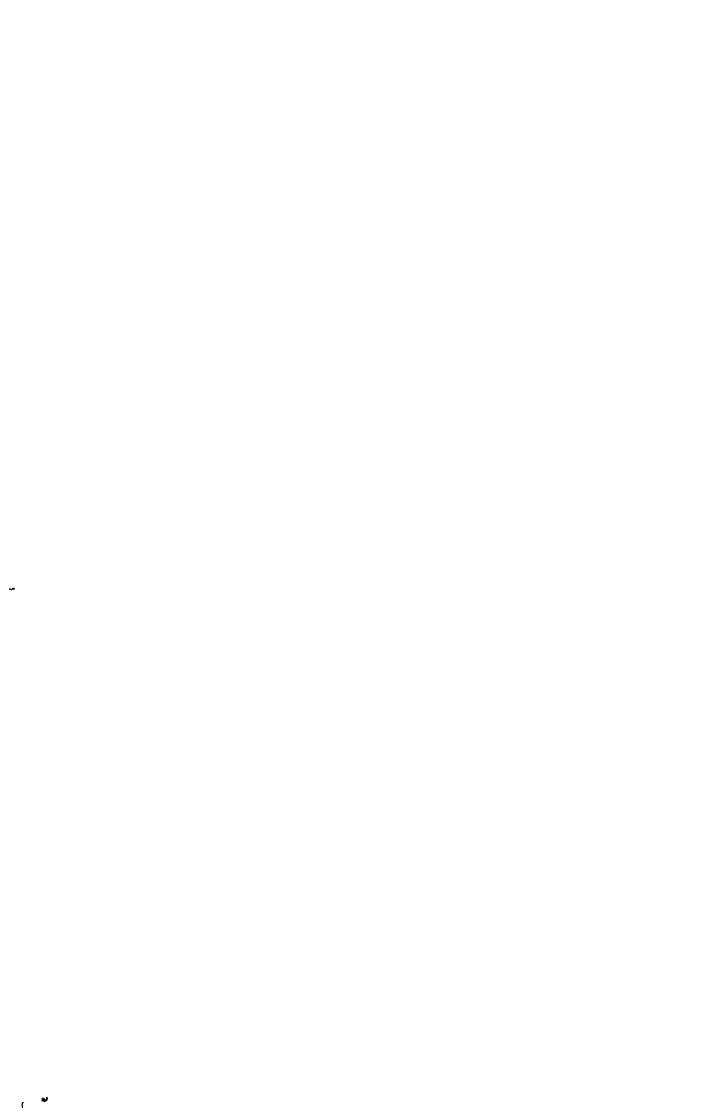
समय अन्य सम्बन्धियो सहित यशस्विनी गान्धारी, युयुत्सु और सञ्जय भी धृतराष्ट्र के समीप बैठे थे।

श्रीकृष्ण और राजा धृतराष्ट्र ने शङ्ख लेकर महाराज युधिष्ठिर का स्वयं अभिषेक किया। ब्राह्मणो को सहस्रो सुवर्ण मुद्राएँ दी गईं। स्वस्ति-वाचन और जय जय-कार के शब्दो से नभोमण्डल पूरित हो गया। तब युधिष्ठिर ने ब्राह्मणो और प्रजाजनो को सम्बोधित करके कहा कि महाराज धृतराष्ट्र हमारे परम देवता और आदरणीय पिता हैं, यदि आप लोग हमारा प्रिय चाहते है, तो महाराज की आज्ञा मानना आपका प्रथम धर्म है। आप लोग सदा इनकी भलाई का ध्यान रखे।

१८

युधिष्टिर को राज्य करते-करते अब पन्द्रह वर्ष हो गए। धर्मराज युधिष्टिर की आज्ञा के अनुसार धृतराष्ट्र और गान्धारी की सेवा का अत्यधिक ध्यान रखा जाता था। युधिष्ठिर ने अपने भाइयो से कह रखा था कि हमारे ही कारण से इनके पुत्र, पौत्र मृत्यु को प्राप्त हुए है, अत इनकी सेवा और भक्ति मे किसी प्रकार की कसर न रहने पाए और इनको अपने पुत्र पौत्रो का अधिक शोक न होता रहे। युधिष्ठिर के इन सुप्रबन्ध के कारण पतिव्रता गान्धारी भी पुत्रो का शोक भूल कर पाण्डवो पर पुत्र तुल्य स्नेह करने लगी और धृतराष्ट्र भी पाण्डवो पर बहुत प्रीति करने लग पड़े थे। युधिष्ठिर की सज्जनता से बूढ़े राजा और रानी बड़े सन्तुष्ट थे।

युधिष्ठिर के भय से भीमसेन भी धृतराष्ट्र की प्रतिष्ठा करते थे परन्तु चित्त मे उनसे उदासीन रहते थे। दुर्योधन की दुष्ट नीति का भीमसेन को विस्मरण नहीं हो सका। दुर्योधन ने जो जो दुष्ट

दूर तक उनके पीछे चलते गए। अन्त को सब प्रजा-जन और युधिष्ठिर आदि पाण्डव लौट आए।

२०

तब विदुर की अनुमति से धृतराष्ट्र ने भागीरथी-तीर पर निवास किया। गान्धारी और धृतराष्ट्र जब स्नान कर चुके तब कुन्ती उन्हे अपने स्थान पर ले आई। वहाँ सब ने सन्ध्या अग्निहोत्र किया। तदनन्तर वहाँ से वे कुरुक्षेत्र गये। कुरुक्षेत्र मे शतयूप का आश्रम था। शतयूप केकयो का एक बड़ा प्रतापी राजा था। अपने पुत्र को राज्य देकर उसने वन मे प्रवेश किया था। वहाँ से धृतराष्ट्र शतयूप के साथ व्यास के आश्रम को गये। व्यास से उन्होने विधिवत् दीक्षा ग्रहण की, और व्यास की आज्ञा से शतयूप ने उन्हें वनवास की सारी रीति बता दी। अब धृतराष्ट्र ने अपनी तपस्या आरम्भ की। वल्कल-वस्त्र-धारिणी कुन्ती और गान्धारी भी घोर तपस्या मे प्रवृत्त हो गयीं। इतने मे देवर्षि नारद परिभ्रमण करते हुए वहाँ पहुँचे। नारद जी ने धृतराष्ट्र से कहा कि व्यास जी के बताए हुए मार्ग से आप गान्धारी सहित श्रेष्ठ गति को भी प्राप्त होगे। शतयूप के पूछने पर नारद ने पुन कहा कि धृतराष्ट्र अभी तीन वर्ष तक और तप करेंगे, तब इनका प्राणान्त होगा।

२१

माता कुन्ती और राजा धृतराष्ट्र आदि के चले जाने से युधिष्ठिर का चित्त सदा उदास रहा करता था। उनको वन मे गए एक वर्ष हो चुका था। तब युधिष्ठिर ने निश्चय किया कि परिवार सहित वन में जा कर माता आदि के दर्शन किए जायें। प्रजा मे से भी अनेक जन वृद्ध महाराज के दर्शन को जाने के

क्षत्रिय ही सच्चा पुरुष है। जो पुरुष डरपोक है, जिसमें आत्माभिमान नहीं, क्रोध नहीं, शत्रु से बदला लेने की सामर्थ्य नहीं, उसकी गणना पुरुषों में क्या स्त्रियों में भी नहीं हो सकती। अब पड़े-पड़े शोक से मलिन होने का अवसर नहीं है, शत्रुओं के सिर पर क्षण भर प्रज्वलित हो कर मर जाना ही अच्छा है। शूर, पराक्रमी, सिंह सा बली पुरुष अगर मर जाता है तो भी उसके अधिकार में रहने वाली प्रजा आनन्द से रहती है। इस कारण उठ अपने पराभव का प्रक्षालन कर। अपहृत संपत्ति और राज्य को फिर लेने की चेष्टा कर।"

माता के क्रोध भरे वचनों को सुन संजय ने कहा—माता! मैं समरांगण में मर जाऊँगा, तो तुम संपत्ति-आभूषण, सुख-भोग, और राज्य लेकर क्या करोगी?

विदुला ने कहा—"मैं तेरी मृत्यु नहीं चाहती पर तुझे पराधीन, निर्वीर्य, दीन-हीन पुरुषों के समान जीवित रहते हुए भी नहीं देख सकती। जो क्षत्रिय वृथा जीवन की आशा में फँस कर यथाशक्ति पराक्रम के साथ तेज नहीं दिखाता उसे पंडित लोग अधम कहते हैं। जैसे मृत्यु के मुख में पड़े हुए पुरुषों को औषध नहीं रुचती, वैसे ही जीवन को जीवन बनाने वाला यह सच्चा उपदेश तुझे नहीं रुचता।

बेटा! तेरा नाम सञ्जय अवश्य है, किन्तु जय पाने का पौरुष उद्योग तुझ में नहीं दिखाई देता। इसीलिए कहती हूँ कि अपना नाम सार्थक कर। जो पुरुष पौरुष के साथ नीति के अनुसार कार्य करता है, उसके कार्य की सिद्धि में अन्य पुरुष भी सहायक हो जाते हैं। उस का मनोरथ अवश्य पूरा होता है। हार हो या जीत राज्य मिले या न मिले, दोनों को समान

बेटा! किसी प्रकार की भी आपत्ति आने पर पुरुष को किंकर्तव्यविमूढ़ न होना चाहिए। तेरे सुहृद मन-वाणी-काया से तेरे राज्य की रक्षा चाहते हैं, तू स्वयं डर से व्याकुल हो कर उन्हें भी निराश न कर। तू वही कर जिसमे वे तुझे भयभीत समझ कर तेरा साथ न छोड़ दें।

संजय क्षणिक कायरता-वश शत्रु के पराक्रम को देखकर भयभीत हो गया था। माता के उत्साह-वर्धक, मनोहर हितकारक वचनों को सुनकर उसने अपने हृदय से भय और निराशा को दूर कर दिया और बोला—माता! तुम मुझे भावी कल्याण की आशा दिला कर उत्साहित कर रही हो, इससे या तो मैं जलप्लावित पृथिवी के समान अपने पिता के राज्य का उद्धार करूँगा, अथवा युद्ध मे प्राण दे दूँगा।

इस प्रकार माता के तीव्र वाक्य-बाणों की चोट से सधे हुए घोड़े की तरह उत्तेजित होकर संजय ने शत्रु पर आक्रमण कर दिया, और अंत मे विजय पायी।

कृष्ण को यह आख्यान सुनाकर कुन्ती ने विदा किया। पाण्डव महाभारत युद्ध मे प्रवृत्त हुए अन्त मे विजयी हुए।

आज भारत की इस दीन-हीन अवस्था मे कितनी माताएँ है जो अपने पुत्रो को ऐसा उपदेश देती है उन्हे कार्य मे प्रवृत्त करती हैं, उनमे साहस और शक्ति फूंकती है और उनमे बलिदान की भावना भरती है।

तीन जनको मे से किसी एक की राजसभा मे एक बार एक न्त रूपवती युवती उपस्थित हुई थी। सांख्य-ज्ञान मे और -क्रियाओं मे वह अद्वितीया थी। वह राजा जनक के ब्रह्म-नी होने की परीक्षा लेने आई थी। प्रश्न किये जाने पर उसने कहा था कि उसका नाम सुलभा है और वह एक प्रतिष्ठित राज-कुल की कन्या है। अपने सदृश पति न मिलने के कारण से उसने सदा ब्रह्मचारिणी रहने का व्रत धारण कर लिया था।

२

इसी प्रकार सुप्रसिद्ध गर्ग-कुल मे भी एक कन्या-रत्न उत्पन्न हुई। उसके पिता वचक्नु गर्ग थे। इसलिये वह कन्या वाचक्नवी भी कहाती थी। उस कन्या के हृदय मे बाल्य-काल से ही वैराग्य का मूल जम गया। उसने सोचा कि विवाह-बन्धन मे पड़कर वह अपनी उच्च-धारणाओं को पूर्ण नही कर सकेगी। अत: उसने आजन्म अविवाहित रहने की प्रतिज्ञा कर ली। अपने पिता और दूसरे ऋषियों से उस ने ब्रह्म-ज्ञान प्राप्त किया और गार्गी ब्रह्म-वादिनी के नाम से विख्यात हुई।

महाभारत कालीन किसी जनक ने एक बहुदक्षिणा-युक्त यज्ञ रचा। उस यज्ञ मे कुरु-पाञ्चालो के अनेक ब्राह्मण एकत्र हुए। गर्ग भी इन्हीं स्थानो मे से कहीं का रहने वाला था। उसकी कन्या भी उस यज्ञ मे उपस्थित हुई। उस जनक के हृदय मे जिज्ञासा उत्पन्न हुई कि इन ब्राह्मणो मे कौन सब मे अधिक विद्वान है। उसने एक सहस्र गायें मँगाईं। उनमे से प्रत्येक के एक-एक सींग में दस दस मुद्राएँ बँधवाईं। तब वह उन ब्राह्मणो से बोला—हे ब्राह्मणो! आप मे से जो ब्रह्मिष्ठ हैं वह इन गायों को ले जाए। उन ब्राह्मणो का साहस न हुआ कि गायों को ले जावें। उन

" ाना वाले हैं।" अश्वल को इतने पर सन्तोष नहीं हुआ। उसने याज्ञवल्क्य से वाद आरम्भ कर दिया।

उस वाद में अनेक ब्राह्मणों ने भाग लिया। वह वाद बृहदारण्यक उपनिषद् के तीसरे अध्याय मे लिपिवद्ध किया गया है। उसके पाठ से पता लगता है कि महाभारत-काल के विद्वान् किस प्रकार से वाद किया करते थे। उस वाद मे भगवती गार्गी ने भी पूरा भाग लिया था इसीलिए उस वाद के गार्गी सम्वन्धी भाग आगे लिखे जाते हैं।

५

याज्ञवल्क्य ने अश्वल को चुप करा दिया। फिर जारत्कारव आर्तभाग भी याज्ञवल्क्य के उत्तरो से मौन होगया। तव भुज्यु-लाह्य-यनि, उपस्त चाक्रायण और कहोल कौषीतकेय, भी अपने अपने प्रश्नो का उत्तर पाकर शान्त हो गए। तव वाचक्नवी गार्गी उठी। वह पूछने लगी—

गार्गी—ससार के सव पदार्थ जल मे ओत-प्रोत हैं। तो यह जल किस मे ओत-प्रोत है ?

याज्ञवल्क्य—वायु मे।

गार्गी—वायु किस मे ओत प्रोत है ?

याज्ञवल्क्य—अन्तरिक्ष-लोक मे।

गार्गी—अन्तरिक्ष लोक किस मे ओत प्रोत है ?

याज्ञवल्क्य—गन्धर्वलोक मे।

गार्गी—गन्धर्वलोक किस मे ओत प्रोत है ?

याज्ञवल्क्य—आदित्य लोक मे।

गार्गी—आदित्य-लोक किस मे ओत-प्रोत है ?

याज्ञवल्क्य—चन्द्र-लोक मे।

वहाँ हिन्दी के राष्ट्रीय कवि भी मुक्त-कण्ठ से उसकी महिमा गा रहे हैं—

तेरी गौरवमयी गोद का,
रखने को सम्मान।
करते रहे नपूत निछावर,
हँसते हँसते प्राण।
हमारे प्यारे राजस्थान॥
जौहर की ज्वाला में जिनकी
थी अक्षय मुसकान।
धन्य वीरबालाएँ तेरी,
धन्य धन्य बलिदान।
हमारे प्यारे राजस्थान॥

और भी—

धन्य धन्य मेवाड़ महान।
हिमगिरि सा उन्नत यह मस्तक अखिल विश्व का है अभिमान
सदियों से चढ़ते आए हैं तुझ पर लक्ष लक्ष बलिदान
लोहू की लहरों में चलता तेरे गौरव का जलयान
बाप्पा रावल समरसिंह औ भीमसिंह चूडा बलवान

दिल्ली के बादशाहों ने अनेक बार विराट सेनाओं के साथ मेवाड़ पर आक्रमण किया। उन्होंने अनेक बार मेवाड़ी-वीरों के मस्तक झुकाने का प्रयत्न किया पर हिमगिरि के शिखरों के समान वे मस्तक चिर-उन्नत रहे। या तो उसके वीरों ने विजय प्राप्त की या मेवाड़ के लिए अपने को स्वाहा कर दिया। उन्होंने अपने जीते-जी कभी शत्रु को भीतर न घुसने दिया। शत्रु ने जब मेवाड़ में प्रवेश किया तब खँडहर ही खँडहर देखे। इस प्रकार मेवा

इसकी पटरानी चंपावती से पद्मिनी या पद्मावती नामक अत्यंत रूपवती एवं गुणवती कन्या उत्पन्न हुई। उस अनिद्य-सुन्दरी के लिए कहीं योग्य वर न मिलता था। पद्मिनी के पास हीरामन नामक एक सुशिक्षित वाचाल और कांचनवर्ण का तोता था। एक दिन वह तोता पद्मावती से उसके वर न मिलने के विषय मे कुछ कह रहा था कि राजा ने सुन लिया और बहुत कोप किया। राजा के डर से सूआ एक दिन उड़ गया। पद्मावती ने सुन कर बहुत विलाप किया। सूआ वन मे उड़ता-उड़ता एक बहेलिये के हाथ पड़ गया। जिसने बाजार में लाकर उसे चित्तौड़ के एक ब्राह्मण के हाथ बेच दिया। ब्राह्मण ने वह तोता चित्रसेन के पुत्र और चित्तौड़ के राजा रतनसेन के हाथ एक लाख रुपये मे बेच दिया। धीरे धीरे रतनसेन उसे बहुत चाहने लगा। एक दिन राजा शिकार को गये हुए थे तब उस की पटरानी ने एक बार सुन्दर श्रृंगार किया और अपने रूप के घमण्ड में आकर सूए से पूछा कि संसार मे मेरे समान सुन्दरी भी कहीं है? इस पर तोता हँसा और बोला—

जेहि सरवर महँ हंस न आवा बगुला तेहि सर हंस कहावा।

ईश्वर ने संसार मे एक से एक बढ़कर सुन्दरी स्त्रियाँ बनाई हैं, पर सिंहलद्वीप की पद्मिनी के रूप की उपमा ही नहीं दी जा सकती। वह इतनी सुन्दर है कि उसमें और तुम में दिन और अँधेरी रात का अंतर है। रानी ने इस भय से कि कहीं यह तोता राजा के सम्मुख भी पद्मिनी के रूप की प्रशंसा न करे उसे मारने की आज्ञा दी। पर दासी ने राजा के भय से उसे मारा नहीं अपने घर मे छिपा कर रख दिया। शिकार से लौटने पर जब तोते के बिना राजा रतनसेन बहुत व्याकुल और क्रुद्ध हुआ तब तोता लाया गया और उसने राजा से सारी कहानी कह दी और

गन रतनसेन को लिखा। जिसे पढ़कर राजा अत्यन्त क्रुद्ध हुआ। इस पर सुलतान ने विशाल सेना सहित चित्तौड़ गढ़ पर चढ़ाई कर दी। इधर रतनसेन ने भी अपने अनेक राज-सामंतों को युद्ध में सहायता के लिए आमन्त्रित कर लिया। घमासान युद्ध प्रारंभ हुआ—

नई बार दोउ दल गाजे, हिन्दू तुरक दोउ सम बाजे
धरती सरग दोऊ दल जूझहिं ऊपर जूह, कोई टरे न टारे दोनों वज्रसमूह

सुलतान निरंतर आठ वर्ष तक चित्तौड़गढ़ को घेरे रहा, परन्तु दुर्ग विजय न कर सका। इस समय सुलतान को दिल्ली से सूचना प्राप्त हुई कि विदेशी शत्रु ने पश्चिम से आक्रमण कर दिया है और राज्य संकट में है। यह समाचार पाकर सुलतान अत्यधिक चिन्तामग्न हुआ। अंत में उसने छल पूर्वक संधि का प्रस्ताव भेजा और कहलाया कि हम अब पद्मिनी को नहीं माँगते। इस पर विश्वास कर राजा ने सुलतान का चित्तौड़ में आतिथ्य किया सुलतान चित्तौड़ की अनुपम शोभा समृद्धि तथा जलाशय के मध्य में बने हुए पद्मिनी के महल आदि को देखकर स्तब्ध सा हो गया। गोरा और बादल नामक दो वीर सामन्तों ने राजा को संकेत किया कि बादशाह अवश्य छल करेगा इससे सावधान रहें परन्तु राजा ने इनके कथन पर विश्वास न किया। राज महल की असंख्य रूपवती दासियों को देखकर सुलतान ने राघव से पूछा कि इन में पद्मिनी कौन सी है राघव ने उत्तर दिया—ये तो पद्मिनी की सेवा करने वाली दासियाँ है। भोजन से निवृत्त होकर सुलतान और राजा दोनों शतरंज खेलने लगे। सुलतान के सामने एक दर्पण रखा हुआ था। जिसके द्वारा एक झरोखे में आई पद्मिनी का प्रतिबिंब उसने देखा। उसके अनिंद्य-सौंदर्य को देख कर वह खेलना भूल गया।

रात्रि मे भी सुलतान उसी गढ़ मे ही रहा। दूसरे दिन प्रात राजा के प्रति अत्यंत स्नेह दर्शा कर उसने वहां से प्रस्थान किया। राजा भी उसे पहुँचाने को चला। प्रत्येक पोल (द्वार) पर सुलतान राजा को नानाविधि भेट देता गया। परन्तु सातवी पोल के बाहर निकलते ही उसने राजा को बन्दी कर लिया। और उसके पैरों मे बेड़ी तथा हाथो मे हथकड़ी डालकर दिल्ली की ओर ले चला।

पद्मिनी को जब यह समाचार मिला, तब वह बहुत व्याकुल हुई। उस विकट अवस्था मे क्या करना चाहिए, यह परामर्श करने के लिए उसने अपने गोरा तथा बादल दो सामंतो को बुलाया। उन्होंने सम्मति दी 'शठे शाठ्य समाचरेत्'' की नीति पर ही इस समय अनुसरण करना चाहिये। उनके परामर्श के अनुसार तत्क्षण १६०० डोलियाँ तैयार कराई गई जिनमे पद्मिनी की सखियो के स्थान पर सशस्त्र सैनिको को बिठाया गया। तदनन्तर पद्मिनी सहित सब ने दिल्ली की ओर प्रयाण किया। दिल्ली पहुँचते ही सुलतान को सूचित किया गया कि पद्मिनी स्वयं ही यहाँ आई है तथा आपसे प्रार्थना करती है कि यदि आज्ञा दी जाय तो वह राणा से आधा घटा एकान्त में अन्तिम साक्षात कर ले तथा चित्तौड़ के कोष आदि की कुंजियाँ राणा को दे दे, तदनन्तर उसी क्षण वह आपकी सेवा मे उपस्थित हो जायगी। कामान्ध सुलतान ने सहर्ष स्वीकृति दे दी। आज्ञा मिलते ही एक ढकी पालकी राजा की कोठरी के पास रख दी गई। उसमे से एक लोहार ने निकल कर राजा के बंधन काट दिये। राजा और रानी तुरन्त पहले से ही सुसज्जित घोड़े पर सवार हो दलबल सहित नगर से बाहर निकल आये। इस कपट का समाचार पाते ही सुलतान ने अपनी सेना राजा और रानी को पकडने के लिये भेजी। राजा और रानी

की रक्षा के लिए बादल उनके साथ गया और गोरा पीछा करने वाली सुलतान की सेना को रोकने के लिए कई वीरों सहित मार्ग में डट गया। दोनों सेनाओं में घमासान युद्ध हुआ जिसमें कई योद्धा हताहत हुए और गोरा भी वीरगति को प्राप्त हुआ। बादल ने राजा और रानी के साथ चित्तौड़ में प्रवेश किया। जहाँ बड़ा हर्षोत्सव मनाया गया।

जब सुलतान ने राजा को पकड़ लिया था, तब कुंभलनेर (कुंभलगढ़) के राजा देवपाल ने दूती भेजकर पद्मिनी को प्रलोभन दिखाना चाहा था। अब रानी के मुख से देवपाल की दुष्टता का वृत्तान्त सुनने पर राजा ने कुंभलनेर पर चढ़ाई कर दी। वहाँ देवपाल से युद्ध हुआ। जिसमें देवपाल मारा गया और रतनसेन उसके हाथ की सांग से आहत होकर चित्तौड़ को लौटा और बादल के कंधों पर चित्तौडगढ की रक्षा का भार डाल कर स्वर्ग सिधारा। उसकी दोनों रानियाँ पद्मावती और नागवती राजा के शव के साथ ही हँसते हँसते सती हो गई। इतने में सुलतान ने चित्तौड़गढ़ पर फिर चढ़ाई की। बादल बड़ी वीरता से लड़कर समरशय्या पर गिर पड़ा अन्त में दुर्ग बादशाह के हाथ लगा। भीतर आने पर उसने देखा कि सब खेल समाप्त हो चुका था केवल उसके लिए मुट्ठी भर राख रह गई थी। उसने एक मुट्ठी राख उठाली—

राख उठाय लीन्ह एक मूठी दीन्ह उड़ाय पिरथवी झूठी

इस कथा की समाप्ति पर जायसी ने इस सारी कथा का एक रूपक बतलाकर लिखा है—'इस कथा में चित्तौड शरीर का, राजा रतनसेन मन का, सिंहलद्वीप हृदय का पद्मिनी बुद्धि की तोता मार्ग-प्रदर्शक गुरु का नागमती सांसारिक कार्यों की राघव

शैतान का, सुलतान अलाउद्दीन माया का सूचक है जो इस प्रेम-कथा को समझ सकें, वे इसे उसी दृष्टि से देखें"।

इतिहास के अभाव में लोगों ने मुहम्मद जायसी द्वारा वर्णित ऐतिहासिक उपन्यासों की सी कविता-बद्ध कथा को वास्तविक इतिहास मान लिया। यद्यपि इसमें बहुत सा भाग कल्पित था तथापि वह कथा इतनी प्रचलित होगई थी कि 'पद्मावत' बनने के ७० वर्ष के पश्चात् मुहम्मद कासिम फिरिश्ता ने अपनी पुस्तक 'तारीख फिरश्ता' में इस कथा को थोड़े परिवर्तन के साथ सम्मिलित कर दिया। उसमें पद्मिनी को राय रतनसेन की कन्या बताया है। शेष पद्मिनी की चतुरता का उसी प्रकार वर्णन है। इस प्रकार फिरिश्ता ने इस औपन्यासिक कथा को सर्वथा इतिहास का रूप दे दिया।

विदेशी विद्वान कर्नल जेम्स टाड ने इस गौरवमयी कथा को कुछ और ही रूप दिया है, और इस कहानी को अधिक रोचक बना दिया है। साधारणतया यही कहानी आजकल अधिक प्रचलित है। इतिहास और काव्य-ग्रन्थ प्रायः इसी कथा को आज तक अपनाते आ रहे हैं। उनके लेख का सारांश है—विक्रमी संवत् १३३१ में (ई० स० १२७४ में) चित्तौड़ के सिंहासन पर लखमसी (लक्ष्मणसिंह) बैठा। किन्तु वह अभी बालक था। अब उसकी ओर से राजकार्य का सचालन उसके चाचा भीमसी (भीमसिंह) करते थे। भीमसिंह बलवान और बुद्धिमान थे। उन्होंने अनेक बार अपने साहस और शक्ति से शत्रुओं को परास्त किया था। प्रजा उनकी भुजाओं की छाया में सुख-भोग रही थी। उनका विवाह सिंहलद्वीप के राजा हम्मीरसिंह चौहान की अनिंद्य-सुन्दरी पुत्री पद्मिनी से हुआ था।

पद्मिनी के अनुपम सौंदर्य की गाथा जब दिल्ली के विषयी सुलतान अलाउद्दीन ने सुनी, तो उसने पद्मिनी को अपने अन्तःपुर में लाने का निश्चय किया। अपनी विशाल सेना सहित अलाउद्दीन ने चित्तौड़ गढ़ की ओर प्रयाण किया। जब राजपूतों को, अलाउद्दीन के इस कुत्सित विचार का पता लगा तो वे अपनी मर्यादा की रक्षा में सन्नद्ध हो गये। दोनों सेनाओं का सामना हुआ। एक ओर देश-भक्ति के मतवाले राजपूत थे, दूसरी ओर वासना से अंधा अलाउद्दीन। भयंकर युद्ध हुआ। परन्तु अलाउद्दीन को अपनी आशा-लता फलवती होती न प्रतीत हुई। तत्पश्चात् उसने कपट का आश्रय लिया। राजा भीमसिंह को उसने कहला भेजा कि मैंने रानी पद्मिनी के अलौकिक रूप लावण्य की अत्यधिक प्रशंसा सुनी है, यदि एक बार मुझे दर्पण में से उसका प्रतिबिम्ब दिखा दिया जाय तो मैं सेना सहित लौट जाऊँगा। राजा भीमसिंह ने नरहत्या को वृथा समझ यह प्रस्ताव स्वीकृत कर लिया।

अलाउद्दीन को यह बात भली भाँति ज्ञात थी कि सहज-शूर राजपूत विश्वासघाती नहीं होते वे अपने वचन के पालन के लिए प्राण तक दे देते हैं। इसी विश्वास के बल पर उसने कुछ सिपाहियों सहित दुर्ग में प्रवेश करने का साहस किया। जिस अलाउद्दीन ने पवित्र सीसोदिया कुल को कलंकित करना चाहा था जिसके घृणित प्रस्ताव को श्रवण कर राजपूतों का रक्त उबल उठा था उसी अलाउद्दीन ने जब अतिथिरूप से राजप्रासाद में प्रवेश किया तब उसका सब भाँति सत्कार किया गया। अन्त में दर्पण में से उसे रानी पद्मिनी का प्रतिबिम्ब प्रदर्शित किया गया। उस अद्वितीय सुन्दरी देव-प्रतिमा के प्रतिबिम्ब ने बादशाह की पापमयी वासना को पुनर्जागरित कर दिया। परन्तु उस समय वह शान्त रहा

पालकी में विठला कर वहाँ से चल पड़े। शेप राजपूत अपने अस्त्र-शस्त्र सँभाल कर पालकियों मे तैयार हो वैठे।

समय अधिक वीत जाने पर कामांध सुलतान अधीर होकर खीमे के भोतर चला गया, और उसने पालकी का परदा उठा दिया। तत्क्षण पद्मिनी के वदले पालकियों मे से वीर राजपूत निकल आये और उन्होंने सुलतान के साथियो को गाजर-मूली की तरह काटना शुरु किया। अलाउद्दीन भी वहीं यमलोक को सिधार जाता पर उसका भाग्य अच्छा था, वह वच गया। अव राजपूतो और मुसल्मानों मे फिर घमासान युद्ध प्रारंभ हुआ। अंत मे सेना की भयानक दुर्दशा देख उसे दिल्ली को लौटना पड़ा।

यद्यपि इस युद्ध में विजय-श्री राजपूतों के हाथ रही, परन्तु वीरवर गोरा तथा उसके पाँच हजार साथियो की मृत्यु इस युद्ध में हो गई। राजपूत इस क्षति को पूरा न कर सके।

अलाउद्दीन के हृदय मे यह पराजय निरंतर शूल की तरह चुभती रही। अंत मे सन् १२९० मे उसने अपार सेना लेकर फिर चित्तौड़ पर आक्रमण किया। इस वार राजपूतो ने अपनी विजय की आशा छोड़ दी। परन्तु पराधीनता उन्हें स्वीकृत न थी। युद्ध में मृत्यु को वे श्रेयस्कर समझते थे। अतएव वलिवेदी के पथिक और स्वतन्त्रता के उपासक राजपूत सामन्त आकर एकत्र होने लगे। फिर नर-हत्याकारी संग्राम प्रारंभ हुआ। सर्वथा निराश होने पर राजपूतो ने समरांगण मे मर कर अमर होने का निश्चय कर लिया। विजयी विधर्मी कहीं कुल कामिनियो को अपमानित न करे इस डर से वीरांगनाओं ने जौहर व्रत की—जीते-जागते अग्नि कुंड में प्रवेश करने की—ठानी। तदनुसार महारानी पद्मिनी के प्रासाद के पार्श्व की एक अंधकारमय सुरंग मे अग्निकुंड

प्रदीप्त किये गये। तत्पश्चात् पद्मिनी और अपने पतियों के चरणों का ध्यान करती हुई, मुक्तकेशा अनेक बालाएँ दुर्ग सहित उस प्रज्व-लित अग्नि में कूद पड़ीं। जिस सौंदर्य को देख कर विषयी अला-उद्दीन के हृदय में पाप-वासना प्रदीप्त हो उठी थी, वही देव-दुर्लभ सौन्दर्य अपने कुल गौरव की रक्षा के लिए क्षणभर में स्वाहा हो गया।

अपनी बहनों, माताओं तथा स्त्रियों से निश्चिन्त हो राजपूत केसरिया बाना पहन दुर्ग का द्वार खोल भूखे सिंह के समान सुल-तान की सेना पर झपट पड़े और भयंकर युद्ध करते हुए वीर-गति को प्राप्त हुए। कामनान्ध अलाउद्दीन ने निर्जन, बाधा-रहित दुर्ग में प्रवेश किया, परन्तु जिस रूपवती पद्मिनी के लिए उसने इतना कष्ट उठाया था। उसकी प्रज्वलित चिता का ही वह दर्शन कर सका।

प्रसिद्ध इतिहासज्ञ रायबहादुर गौरीशंकर हीराचन्द ओझा ने अपने 'राजपूताना का इतिहास' नामक ग्रंथ में पद्मिनी विषयक उपरिलिखित सब कथाओं को अविश्वास योग्य सिद्ध किया है। उनका कथन है कि कर्नल टाड ने यह कथा मेवाड़ के भाटों के आधार पर लिखी है और भाटों ने उसे पद्मावत से लिया है, जो कि इतिहास ग्रन्थ नहीं अपितु कवितावद्ध ऐतिहासिक उपन्यास है। जिसका कलेवर इन ऐतिहासिक बातों पर रचा गया है कि रतन-सेन (रतनसिंह) चित्तौड़ का राजा था, पद्मिनी या पद्मावती उसकी रानी थी और अलाउद्दीन दिल्ली का सुलतान था जिसने रतनसेन से युद्ध करके चित्तौड़ दुर्ग विजय किया था। बहुधा अन्य सब बातें ग्रन्थ को रोचक बनाने के लिए कल्पना मात्र की गई हैं। क्योंकि रतनसिंह एक वर्ष भी राज्य करने नहीं पाया, ऐसी दशा में योगी बनकर उसका सिंहलद्वीप तक जाना और वहाँ की राजकुमारी

कई सामन्तों सहित मारा गया। उसकी रानी पद्मिनी ने कई स्त्रियों सहित जौहर की अग्नि में प्राणाहुति दी।

हम सुप्रसिद्ध इतिहासज्ञ रायबहादुर गौरीशंकर हीराचन्द ओझा के कथन को अप्रमाणित नहीं कह सकते और न प्रचलित कथा को ही अविश्वास-योग्य ठहरा सकते हैं। हमें तो केवल इतना ही प्रदर्शित करना है कि अतिशय-सुन्दरी पद्मिनी वास्तव में सच्ची राजपूतनी थी, जिसने विधर्मी शत्रुओं से अपमानित होने के स्थान पर सहर्ष अग्नि-प्रवेश स्वीकार कर अपने लोकदुर्लभ सौंदर्य को स्वाहा कर भावी भारतीय स्त्रियों के लिए एक अनुपम आदर्श स्थापित कर दिया और इस बात में सब सहमत हैं। वीर कवि श्री वियोगी हरि के वचनों में हम यही कह सकते हैं—

नई भस्म जहँ पद्मिनी आत्म-भस्म समोय
यज्ञ अग्निहूँ ते अधिक, पावन पावक सोय।
क्यों न धारिये सीस पै वह जौहर की राख,
नव-तनु भूषन भस्म ते जो पुनीत गुन लाख।

पन्ना

स्वनाम धन्य हिन्दूपति महाराणा साँगा के परलोक-वास के साथ ही चित्तौड़ पर आपत्तियों के बादल मँडराने लगे। उस समय ऐसा कोई शक्तिशाली पुरुष न था जो चित्तौड़ की बागडोर अपने हाथ में लेकर रजपूती गौरव को बढ़ाने में समर्थ होता। राणा का ज्येष्ठ पुत्र रत्नसिंह गृहकलह में मारा गया। वह निस्संतान था, अतः उसका छोटा भाई विक्रमादित्य चित्तौड़ के सिंहासन का अधिकारी हुआ। परन्तु वह बड़ा दुष्ट-प्रकृति था। राजपूत सामंत उससे असंतुष्ट थे। इतने में गुजरात के सुलतान बहादुर शाह ने चित्तौड़ पर चढ़ाई की। अन्य उपाय न देख राजमाता कर्मवती ने मालवा आदि के जिले देकर उससे संधि कर ली। बहादुर शाह की उक्त चढ़ाई से भी महाराणा का चालचलन कुछ न सुधरा और सरदारों के साथ उसका बर्ताव पहले का-सा ही बना रहा। जिससे बहुत से सरदार उसका साथ छोड़ गए। कुछ समय बाद बहादुरशाह ने फिर दुबारा चित्तौड़ पर चढ़ाई कर दी। वीरांगना राजमाता कर्मवती ने सरदारों को प्रोत्साहन दिया। उसकी प्रेरणा से सरदार द्वेष-भाव भूलकर देश के लिए बलिदान होने को जुट गये। राजवंश की रक्षा के लिए राणा विक्रमादित्य और वीरवर साँगा के दूसरे पुत्र उदयसिंह को बूँदी भेज दिया गया और युद्ध-काल के लिए देवलिए के रावत बाघसिंह को महाराणा का प्रतिनिधि बनाया गया। लोमहर्षण युद्ध हुआ। अनेकों वीर सरदारों ने केसरिया बाणा पहन युद्धभूमि में शत्रुओं का संहार कर वीर-गति

पाई। बहुत सी स्त्रियों ने हाड़ी रानी कर्मवती के साथ जौहर कर सतीत्व-रक्षार्थ प्राणाहुति दे दी। युद्ध मे बहादुरशाह की विजय हुई। यह युद्ध 'चित्तौड़ का दूसरा साका' के नाम से प्रसिद्ध है।

टॉड-राजस्थान मे लिखा है कि कर्मवती ने दिल्ली के बादशाह हुमायूँ के पास राखी भेजी थी, और वह रक्षाबंधन के पवित्र ऋण को चुकाने के लिए चित्तौड आया। पर उस समय वह शेरशाह के साथ युद्ध मे व्यस्त था, अतएव उसे पहुँचने मे देर हुई। उसके आने के पहले ही चित्तौड़ का विध्वंस हो चुका था और रक्षाबंधन भेजने वाली उसकी बहन सती होकर स्वर्ग सिधार चुकी थी। तब उसने बहादुरशाह को वहाँ से भगाकर फिर विक्रमादित्य को राजा बनाया।

सुप्रसिद्ध इतिहासज्ञ रायबहादुर गौरीशंकर हीराचंद ओझा इस घटना को कुछ अन्य रूप मे वर्णन करते हैं। उनका कथन है कि बहादुरशाह की पहली चढाई के समय कर्मवती ने हुमायूँ से सहायता मिलने की आशा पर अपना वकील उसके पास भेजा था परन्तु उसने सहायता न दी। पीछे हुमायूँ भी बहादुरशाह से लड़ने के लिए चित्तौड़ की तरफ बढा और ग्वालियर आ पहुँचा, जिसकी सूचना [illegible] बहादुरशाह ने उसको लिखा कि मैं इस [illegible] र रहा हूँ। अगर तुम इस समय हिन्दुओं [illegible] के सामने क्या जवाब दोगे। यह पत्र [illegible] ही ठहर गया, और युद्ध के परिणाम [illegible] की समाप्ति पर बहादुरशाह के [illegible] कर हुमायूँ चित्तौड की ओर [illegible] हित वहाँ से भाग गया हुमायूँ [illegible] बहादुरशाह समुद्र मे मारा

गया। इधर सुअवसर देखकर मेवाड़ के सरदारों ने चित्तौड़-गढ़ पर बिना रक्तपात के ही अधिकार कर लिया। फिर वे सरदार राणा विक्रमादित्य और उदयसिंह को बूँदी से ले आये।

टॉड-साहब या ओझा जी इनमें से किसी का भी कथन स्वीकृत किया जा सकता है, दोनों का परिणाम एक ही है कि चित्तौड़ पर उसके राजवंश का पुनः अधिकार हो गया।

चित्तौड़ का जो राजवंश सदा से अपनी शुभ्रकीर्ति-पताका फहराता रहा है जिस राजवंश की रक्षा सानन्द अपना बलिदान देकर भी करते रहे हैं जिस पवित्र राजवंश में आगे चलकर हिन्दू-पति महाराणा प्रताप का अभ्युदय होने वाला था उसी राजवंश का अंत तुच्छ प्रलोभन के कारण एक ऐसे व्यक्ति द्वारा होने लगा था जिसकी नसों में उसी राजवंश का रक्त प्रवाहित हुआ था। परन्तु उसी समय पर एक ऐसी घटना हुई जो अनन्तकाल के लिए भारतीय इतिहास के पन्नों में स्वर्णाक्षरों में अंकित हो गई है। राजमहल की एक दासी ने देश के कल्याण [illegible] अपने स्वामी के पुत्र की रक्षा के लिए अपने बच्चे का—अपने हृदय के टुकड़े का रक्त देकर उस पवित्र राजवंश की रक्षा की। उस अनूठे त्याग के कारण ही तो चित्तौड़ आज [illegible] है।

ऊपर [illegible] पुनः चित्तौड़ का राणा [illegible] विक्रमादित्य अपना [illegible] जिसने कुछ भी [illegible] राजपूत [illegible] अपने [illegible] ऐसी दशा में राणा साँगा के [illegible] कुँवर पृथ्वीराज का [illegible] पुत्र (दासीपुत्र)

मे उस स्वामिभक्त के मन मे यह विचार आया कि यह नृशंस उदय-सिह का भी अवश्य अत करेगा। वह तत्क्षण पन्ना के पास चला। पन्ना उस समय राजकुमार उदयसिह और चंदन को लेकर सोई हुई थी और महलों मे कोलाहल होने से उसकी निद्रा भंग हो गई थी। इतने मे बारी वहाँ पहुँचा और बोला—पन्ना! बनवीर ने राणा विक्रमादित्य की हत्या कर दी है और वह कदाचित् उदय का भी आज ही रात को अंत कर देगा। अब उसकी रक्षा तुम्हारे ही हाथ में है।

यह सुन पन्ना काँप उठी, पर क्षण भर मे ही एक विचार ने उसके मुख-कमल को खिला दिया। उसने बारी से कहा—देख इस मिठाई के टोकरे मे उदय को छिपाकर किले से इसी समय बाहर चला जा। नदी के किनारे पर मेरी प्रतीक्षा करना। मैं थोड़ी देर बाद तुझसे वहीं आकर मिलूँगी। बारी ने कुछ प्रश्न करना चाहा। परन्तु पन्ना ने उसे बिना कुछ बोले शीघ्रता से वहाँ से निकल जाने को कहा।

बारी ने वैसा ही किया जैसा पन्ना ने कहा था और चुपचाप वहाँ से चला गया। उसके अनन्तर पन्ना ने राजवंश की रक्षा के लिए—अपने स्वामी के पुत्र की रक्षा के लिए—अपने पुत्र चंदन को राजकुमार के स्थान मे सुला दिया जिससे बनवीर को किसी प्रकार का सदेह न हो। इतने मे रुधिर से रंगी नंगी तलवार लिए वधिक बनवीर ने वहाँ प्रवेश किया और पन्ना से पूछा—उदयसिह कहाँ है? अपने हृदय पर पत्थर रखकर पन्ना ने अपने चंदन की ओर संकेत कर दिया और उधर से मुख मोड़ लिया।

निर्दयी बनवीर ने उस पर ज़ोर से तलवार का प्रहार किया, बालक के मुँह से एक चीख निकली और वह समाप्त हो गया।

ओझा जी के मतानुसार पंद्रह वर्ष का, हमें इस विवाद से तात्पर्य नहीं। हमें तो यहाँ केवल उस आदर्श स्वामिभक्ता धाय के अनुपम त्याग का ही वर्णन करना है।

पुत्रहीना पन्ना अपने स्वामी के पुत्र को लेकर अब इधर-उधर भटकने लगी, वह पहले उदयसिंह को लेकर चित्तौड़ दुर्ग की रक्षा में अपना बलिदान देने वाले स्वर्गीय वीर बाघसिंह के पुत्र देवलिये के रावत रायसिंह के पास पहुँची। उन्होंने उदयसिंह का बहुत कुछ सत्कार किया परन्तु वनवीर के भय से राजकुमार की रक्षा का भार अपने ऊपर न लिया तथा सवारी और रक्षा का प्रबंध कर उसे डूंगरपुर भेज दिया। वहाँ के रावल आसकरण ने भी वनवीर के डर से उसे आश्रय न दिया, और घोड़ा तथा मार्ग-व्यय देकर विदा किया। दो स्थानों से निराश होने के पश्चात् पन्ना कई दिन तक पहाड़ों के बीच में ईडर के आसपास के गावों में भीलों के साथ घूमती रही। तदनन्तर कुंभलनेर पहुँची और उसने वहाँ के किलेदार आशा देपुरा (महाजन) से प्रार्थना की कि अपने भावी नरेश के प्राण बचाइये। सारा वृत्तान्त सुनकर वह असमंजस में पड़ गया। यह सब वृत्तान्त उसकी माँ ने सुना तो उसने अपने पुत्र से कहा— महाराणा सांगा ने उपकार कर तुम्हें उच्च पद पर पहुँचाया है क्या तुम उसके निराश्रित पुत्र की सहायता कर अपने उपकार का बदला न दोगे? तुम्हारे लिए तो यह स्वर्ण अवसर है। तुम उपकार करने वाले से भी उऋण होगे और भावी राजा को भी उपकृत करोगे। माता के ये वचन सुनकर उसने राजकुमार को अपने पास रख लिया। अब पन्ना ने शांति की साँस ली।

उदयसिंह के [illegible] अनन्तर वनवीर निश्चिंत हो गया। उसके मार्ग से मानो काँटे दूर हो गये। चित्तौड़ के सब सरदारों ने

वही समझा। वास्तविक रहस्य को तो पन्ना ही जानती थी। जिसने अपने पुत्र को अपने दुःख-सागर में घोला हुआ था। बनवीर निश्चिन्त हो अत्याचार करने लगा।

कुछ सरदार उसके अकुलीन होने के कारण उससे घृणा करते थे। बनवीर ने तलवार के बल से उनको वश में करना चाहा। परन्तु थोड़े ही दिनों में उनको उदयसिंह के जीवित रहने का समाचार मिल गया। शीघ्र ही अग्नि की भांति यह समाचार चारों ओर फैल गया। अब बनवीर ने यह प्रसिद्ध किया कि लोग जिसको उदयसिंह कहते हैं, वह तो कृत्रिम है। परन्तु जब कई सरदारों और उसके ननिहाल वालों ने उसे भली-भांति पहचान लिया तब बनवीर के कथन पर किसी ने विश्वास न किया। अब सरदार जाकर उदयसिंह से मिलने लगे।

उदयसिंह ने सेना सहित बनवीर पर आक्रमण किया। बनवीर पराजित हुआ, और उदयसिंह अपने पैतृक राज्य का स्वामी बना। उदयसिंह के राज्याभिषेक के समय पन्ना जीवित थी। उसने अपनी आँखों से उदय का राज्याभिषेक देख अपने को धन्य माना। महाराणा उदयसिंह भी माता के समान उसके चरणों की पवित्र धूलि लेते थे। पन्ना तुम धन्य हो। तुम-सरीखी स्वामिभक्त इतिहास के पन्नो में बहुत कम मिलेंगी। फिर क्यों तुम्हारी पूजा न हो—

> निज प्रिय लाल कटाय जो, प्रभु-सिसु लियो बचाय।
> क्यों न होय मेवाड में, पूजित पन्ना धाय॥

दुर्गावती

१

भारतवर्ष के वर्त्तमान मानचित्र मे जो प्रदेश मध्यप्रान्त के नाम से अंकित है उसका उत्तरी भाग पन्द्रहवीं तथा सोलहवीं शताब्दी में 'गोंडवाना' के नाम से प्रसिद्ध था। उस प्रान्त के अधिकतर निवासी गोंड लोग थे, और वे ही इस सुविशाल राज्य पर शासन करते थे अतएव उस प्रान्त का नाम गोंडवाना पड़ा था। वर्त्तमान जबलपुर से कुछ मील की दूरी पर गढ़-मंडला नामक शहर वहाँ के तत्कालीन शासकों की राजधानी थी। वर्त्तमान समय पर यहाँ प्राचीन वैभवशाली एवम् शक्ति-संपन्न राज्य के राजप्रासादों के जीर्ण-शीर्ण अवशेष दिखाई देते है। प्राय ८०० वर्ष पूर्व मदनशाह नामक गोंड राजा ने यहाँ जो महल बनवाया था वह आज भी मदन महल के नाम से प्रसिद्ध है और कुछ अच्छे रूप मे दिखाई देता है। पन्द्रहवीं शताब्दी के अंत मे यहाँ परम पराक्रमी सग्रामसिंह नामक राजा हुआ। उसके शासनकाल मे यह राज्य उन्नति और वृद्धि की चरम सीमा को पहुँच गया। पर्वत-श्रेणियो से घिरे होने के कारण यह प्रदेश अत्यधिक सुरक्षित भी था अतएव चारो ओर मुसलमानों का राज्य होने पर भी यह प्रान्त अपनी विजय पताका निश्शंक भाव से फहरा रहा था। उसी सग्रामसिंह का पोता दलपतशाह था। दलपतशाह बड़ा वीर और स्वाभिमानी पुरुष था। उसकी धाक चारों ओर बैठी हुई थी।

महोबानरेश शालिवाहन की अभिलाषा थी कि दुर्गावती का विवाह राजपूताना के किसी उच्च-कुल के राजपूत के साथ हो। अतएव उसने दलपतशाह को इस आशय का स्पष्ट उत्तर भी दे दिया, तथा उसने अनेक क्षत्रिय राजाओं के पास दूत भी भेजे।

महोबानरेश का उत्तर सुनकर वीर दलपतशाह अपमान से जल-भुन उठा। उसने राज-प्रथा के अनुसार अपने बाहुबल से उस कन्या-रत्न को अपनाने का निश्चय किया, और एक बड़ी सेना के साथ महोबा पर आक्रमण कर दिया। यह सुन कर महोबानरेश भी युद्ध के लिए तैयार हुआ। उभयपक्षीय सेनाओं के सामने होते ही घोर-संग्राम प्रारंभ हुआ। एक छोटी सी बात के लिए रक्त की नदियाँ बह निकलीं। सैकड़ों वीर धराशायी हुए। अंत में महोबा-नरेश परास्त हुआ और उसकी सेना भाग उठी। विजय-लक्ष्मी दलपतशाह के हाथ रही और उसके साथ ही लक्ष्मीरूपा दुर्गावती भी दलपतशाह की अंकशायिनी हुई। गढ़मंडला में पहुँचकर दुर्गावती और दलपतशाह का विधिपूर्वक विवाह हुआ। दोनों ही एक-से वीर थे और दोनों की ही अभिलाषा पूर्ण हुई। अब वे दोनों आनंद-पूर्वक रहने लगे।

:

विवाह के पश्चात दलपतशाह ने सबसे पहले अपनी राजधानी मंडला से हटा कर दमोह जिले के सिंगौरगढ़ नामक स्थान में स्थापित की। यह दुर्ग मंडला के दुर्ग से कहीं अधिक सुदृढ़ एवम् विशालकाय था और राज्य की सीमा के ठीक मध्य में पड़ता था। इससे शासन में सुविधा होने लगी।

कुछ काल के अनन्तर दुर्गावती गर्भवती हुई और यथा समय

प्रौढ़ राजा के अभाव में राज्य में अराजकता फैलने की संभावना थी, परन्तु गोंडवाना में उसका नाम भी न दिखाई दिया। अल्पवयस्का तरुण दुर्गावती ने कठिन राज्य-भार को सुचारु रूप से सँभाल कर अपनी अद्वितीय कुशाग्र-बुद्धि, शासन-कार्य-कुशलता और साहस का परिचय दिया। स्वर्गीय महाराज दलपतशाह के राज्य-कर्मचारी अत्यंत सुदक्ष बुद्धिमान एवं कर्तव्य-परायण थे। उनमें अमात्य बाबू आधारसिंह का नाम विशेष उल्लेखनीय है। बाबू आधारसिंह जाति के कायस्थ थे। वे धुरंधर राजनीतिज्ञ, विश्वस्त तथा दृढ़ स्वामिभक्त थे। दलपतशाह के परलोक-प्रयाण के पश्चात् भी आधारसिंह मंत्री पद पर रहे। महारानी दुर्गावती उनकी मंत्रणा के बिना कोई कार्य न करती थी।

महारानी दुर्गावती प्रजा के सुख-दुख का बड़ा विचार रखती थी। प्रजा की समृद्धि और शान्ति में ही वह राज्य की समृद्धि समझती थी। विदेशी ऐतिहासिक विन्सेंट स्मिथ ने अपनी ऑक्सफोर्ड हिस्टरी ऑफ इंडिया नामक पुस्तक में लिखा है कि उसके शासन में कोई त्रुटि नहीं कही जा सकती थी। *

प्रजा के कल्याणार्थ उसने स्थान स्थान पर तालाब कुएँ और धर्मशालाएँ बनवाई थीं। अनाथों को आश्रय देने के लिए अनेक उपाय किये थे। शिल्प और वाणिज्य की ओर भी उसने पर्याप्त ध्यान दिया था। सारांश यह कि अपनी प्रजा को सुखी करने के लिए उसने कोई उपाय शेष न छोड़ा।

---

* [illegible] equivalent to the [illegible] [illegible] provinces then governed by the Dowager Rání [illegible] an excellent princess, [illegible] whose administration no [illegible] could be found.

दुर्बल चित्त अबला के समान वह भयभीत नहीं हुई, अपितु सिंहनी के समान क्षुब्ध और क्रुद्ध होकर उसने अपने क्षत्रियत्व का परिचय देना चाहा। वह जानती थी, भली प्रकार जानती थी कि उस महाप्रतापी दिल्लीश्वर के सन्मुख वह कभी भी विजय-लाभ न कर सकेगी जिसके सामने कि अपनी वीरता और क्षत्रियत्व का अभिमान करने वाले आमेर तथा जयपुर-नरेश विहारीमल जैसे राजा झुक चुके थे। तथापि डरपोक और कायर के समान शत्रुओं और विधर्मियों के सामने सिर झुकाने—विना लड़े उनके हाथ आत्म-समर्पण करने की अपेक्षा, अपने देश की रक्षा के निमित्त—प्राणों से भी अधिक मूल्यवान स्वतंत्रता के लिए—वीरनारी के समान समरभूमि मे मर कर स्वर्ग-प्राप्त करना ही उसने अधिक श्रेयस्कर समझा। माँ और वह वेटा जिसकी मूँछें भी अभी न फूटी थीं, मुगलों को इस चढाई का मज़ा चखाने के लिए तैयार हो गये। रानी ने अपने वीर सैनिकों को बुला कर कहा—

"देश पर बलिदान होने वाले वीरो, तुम्हें पता है कि तुम्हारी स्वतन्त्रता का नाश करने के लिए तुम्हे पराधीन बनाने के लिए दिल्ली के बादशाह अकबर ने बड़ी भारी सेना भेजी है। आज तुम्हारी जन्म-भूमि भावी विपत्ति की सूचना पाकर क्रन्दन कर रही है। उसका गौरव उसका यश उसकी स्वतन्त्रता सब तुम्हारे हाथों मे है। यदि तुम पराधीन होकर रहना चाहो तो तुम खुशी से बैठ सकते हो। पर यदि तुम समझते हो कि तुम्हारी जननी जन्मभूमि की स्वतंत्रता तुम्हारे प्राणों से अधिक मूल्यवान है यदि तुम समझते हो कि पराधीनता और गुलामी मृत्यु से बदतर है तो वीरो! आओ आज एकत्र होकर दुर्दमनीय शत्रु को यह दिखलायें कि गढमंडला के एक भी वीर सैनिक के रहते हुए कोई उस पर

दिलाया—"महारानी जी, आप चिन्ता न करें जब तक हमारे शरीर में प्राण हैं तब तक कोई भी विधर्मी गढ़मण्डला पर अपना अधिकार नहीं जमा सकता।" तदनन्तर रानी और मातृभूमि के तुमुल जयनाद से आकाश गूँज उठा।

गढ़मंडला की साधारण प्रजा भी जन्मभूमि की स्वाधीनता की रक्षा के लिए बद्धपरिकर हुई। पुरुषमात्र जिनके बाहु-युगल खड्गधारण में समर्थ थे, रानी की पताका के नीचे खड़े होकर जय लक्ष्मी की प्राप्ति की लालसा से शस्त्र चमकाने लगे। देखते ही देखते आठ सहस्र अश्वारोही और हज़ारों पदाति वहाँ उपस्थित हो गये। रानी दुर्गावती मुण्डमालिनी चामुण्डा के समान तुरगारूढ़ होकर अपनी सेना-सहित संग्राम-भूमि में आ उतरी। कुमार वीर-नारायण तो उस समय साक्षात कार्तिकेय-सा प्रतीत होता था।

उधर आसफखाँ ने यह सोच रक्खा था कि शक्तिशाली दिल्लीश्वर के प्रचंड प्रताप की ज्वाला से भयभीत होकर अबला दुर्गावती अवश्य ही आत्मसमर्पण कर देगी, अथवा यदि वह पतंग की तरह मरने का निश्चय कर युद्ध ही करेगी तो क्षणमात्र ही में उसकी सेना नष्ट हो जायगी और हम उसे जीवित ही पकड़ लेंगे। परन्तु रणक्षेत्र में आकर उसे अपने भ्रम का ज्ञान हुआ। परन्तु उस समय क्या हो सकता था। वीर रानी के उत्साह पूर्ण वाक्यों से उत्साहित होकर गढमंडला की सेना शत्रुओं को निर्दयता पूर्वक काटने लगी। रानी और उसकी दो-चार चुनी हुई जीवन मरण की संगिनियों के तेज का तो वर्णन ही नहीं हो सकता था अंत में वीर गोंड सैनिकों के दुःसह तेज को न सहकर विपक्षी भाग निकले और आसफखाँ बड़ी कठिनाई से अपने प्राण बचाने में समर्थ हुआ। विजय प्राप्त कर रानी दुर्गावती गढमंडला को लौट आई।

बार बार के विज्ञापन सुनकर [illegible] रानी ने उसकी जागीर जब्त कर ली थी। इस पर वह आसफखाँ से जा मिला। आसफखाँ ने उसे विश्वास दिलाया कि जब गढ़मंडला जीत लिया जायगा, तो उसे राजा बनाया जायगा। पर बदनसिंह की स्त्री को जब इस घटना का पता लगा तो उसे प्राणान्तक पीड़ा हुई। पति की जागीर जब्त होने पर वह गरीबी से गुजारा कर सकती थी परन्तु देश-द्रोह जैसा कलंक अपने कुल पर नहीं देखना चाहती थी। अतएव उसने पति को सूचित किया कि यदि वह अकबर से मिल गया तो वह उसे और बच्चों को जीता न पायगा। जब पति ने उसके उपदेश पर ध्यान न दिया तब वह दुर्गावती से जाकर मिली, और मृत्युकाल तक दुर्गावती के साथ रही।

दूसरा विश्वासघातक था गिरधारीसिंह। जो दुर्गावती का एक सरदार था और जिसने प्रजा को अपने अत्याचारों से तंग कर रखा था। विवश होकर उसे दुर्गावती ने अपने किले में नजरबंद कर दिया था।

इन दोनों विश्वासघातियों ने एक ओर अकबर और आसफखाँ को सब गुप्त भेद बताये दूसरी ओर सेना को निरुत्साहित करने का प्रयत्न किया। ये गद्दार और फूट जहाँ भी आ जायँ उस राज्य का सत्यानाश शुरू से होता आया है। भारत पता नहीं कब तक इनका फल पाता रहेगा।

अपने राज्य में गृह-कलह की भयानक [illegible] रानी डर गई। उसने जान लिया कि युद्ध में अब विजय की कोई आशा नहीं। तथापि प्राण रहते उसने मातृभूमि की रक्षा करने और युद्ध में मर कर स्वर्ग प्राप्त करने का निश्चय न छोड़ा।

अंतिम बार इस युद्ध को समाप्त करने के लिए ईसवी सन्

[illegible] । उन्होंने अपने
सैनिकों [illegible] ।

[illegible] हो गया। उसने इस
[illegible] अथवा
[illegible] यह समाचार मिला कि रानी
की सेना [illegible] उसने [illegible] से
[illegible] ।

इस आकस्मिक [illegible] गोंड सैनिक घबरा उठे। महा-
रानी को इस संकट के प्रतिकार का कोई उपाय न सूझ पड़ा।
किन्तु इसी समय राजकुमार वीरनारायण अपने कुछ साथियों
के साथ शत्रु सेना के सम्मुख आ डटे। इन्हें देख महारानी का हृदय
पुनः एक बार उत्साह से भर आया। वह तत्क्षण युद्ध में भाग
लेने को सुसज्जित हो गई। अब फिर तुमुल युद्ध प्रारंभ हुआ।
वीर बालक वीर नारायण शत्रुओं के आक्रमण भली-भाँति रोक
रहा था। वह दोनों हाथों से तलवार चला रहा था। इसी बीच
बिचारे बूढ़े आधार सिंह शत्रु के वार से आहत होकर भूमि पर
गिर पड़े। इस पर मुगल सेना का साहस बढ़ गया। आसफखाँ
अपने तोपखाने के साथ आगे बढ़ा। वीर नारायण इस भयकर
आक्रमण को [illegible] करने पर भी न सँभाल सका और
भयकर रूप से आहत होकर घोड़े से गिर पड़ा। कुमार के गिरते
ही गोंड सैनिकों ने भागना प्रारम्भ किया। पर दुर्गावती ने उन
को ललकारा और अपनी रानी को लड़ते देख वे फिर लड़ने को
प्रस्तुत हो गये।

सेना के कई पुरुषों ने कुमार को सुरक्षित स्थान पर पहुंचा
कर रानी से प्रार्थना की कि इस अंतिम समय में एक बार आप

चाँदबीबी

गढ़मण्डला के पतन और वीरांगना दुर्गावती के स्वर्गवास के लगभग ३० वर्ष के पश्चात् अकबर—साम्राज्य-लोभी अकबर नर्मदा के उत्तरवर्ती समस्त भारत का ही नहीं अपितु काबुल गजनी और कंधार के विस्तृत प्रदेशों का भी एक छत्र सम्राट् हो गया था। उसने चित्तौड़ ध्वस्त किया, राजपूताना के राजाओं को पराजित किया, गुजरात विजय किया, बंगाल को पराधीन बनाया, काश्मीर, उड़ीसा, सिंध, बिलोचिस्तान, कंधार और काबुल को अपने साम्राज्य में सम्मिलित किया। दर दर के भिखारी, पर स्वतंत्रता के पुजारी हिन्दू-पति महाराणा प्रताप के चिर-उन्नत सिर को छोड़कर इस सुविशाल प्रदेश में कोई सिर ऐसा न था, जो उसके चरणों पर न झुका हो, जिसने उसकी अधीनता स्वीकार न की हो। पर तृष्णा का भी कभी अंत हुआ है? मनुष्य एक वस्तु पाकर दूसरी चाहता है और दूसरी पाकर तीसरी। इस तृष्णा के चक्कर में ही

चाँदबीबी

गढ़मंडला के पतन और वीरांगना दुर्गावती के स्वर्गवास के
लगभग [illegible] वर्ष के पश्चात अकबर—साम्राज्य-लोभी अकबर
नर्मदा के उत्तरवर्ती समस्त भारत का ही नहीं अपितु काबुल गजनी
और कन्धार के विस्तृत प्रदेशों का भी एक छत्र सम्राट् हो गया था।
उसने चित्तौड़ ध्वंस किया, राजपूताना के राजाओं को पराजित
किया, गुजरात विजय किया, बंगाल को पराधीन बनाया, काश्मीर,
उड़ीसा, सिंध, बिलोचिस्तान, कंधार और काबुल को अपने
साम्राज्य में सम्मिलित किया। दर दर के भिखारी, पर स्वतंत्रता के
पुजारी हिन्दू-पति महाराणा प्रताप के चिर-उन्नत सिर को छोड़कर
इस सुविशाल प्रदेश में कोई सिर ऐसा न था, जो उसके चरणों
पर न झुका हो, जिसने उसकी अधीनता स्वीकार न की हो। पर
तृष्णा का भी कभी अंत हुआ है? मनुष्य एक वस्तु पाकर दूसरी
चाहता है और दूसरी पाकर तीसरी। इस तृष्णा के चक्कर में ही
उसका अमूल्य जीवन व्यतीत हो जाता है। अकबर की भी यही
दशा थी। वह अब ओक्सस नदी के पार के [illegible] में
स्थित अपने पूर्वजों की उपनिवेशों और दक्षिण के सुल्तानों के
राज्यों पर अपनी लालची आँखें डाल रहा था।

उसकी सेना की दक्षिण यात्रा प्रारम्भ हुई। [illegible]
वर्ष के पश्चात फिर वीरांगना दुर्गावती की एक अन्य बहन की [illegible]
देखी। अकबर की इस बार की [illegible] नहीं थी [illegible]

इतिहास मे बहमनी राज्य के नाम से प्रसिद्ध है। यह बहमनी राज्य बहुत देर तक स्थिर न रह सका, पन्द्रहवीं सदी के मध्य-भाग मे वह टुकड़ो मे विभक्त होने लगा और अंत मे बहमनी राज्य के खँडहरों पर निम्नलिखित पाँच नवीन राज्यो की उत्पत्ति हुई।

१ अहमदनगर का निजामशाही राज्य।

२ बीजापुर का आदिलशाही राज्य।

३ गोलकुंडा का कुतुबशाही राज्य।

४ बीदर का बरीदशाही राज्य।

५ बरार का इमादशाही राज्य।

ये पाँचों राज्य भी आपस मे सदा युद्ध करते रहते थे। इधर विजयनगर का हिन्दूराज्य दिन पर दिन उन्नति कर रहा था। विजय नगर के हिन्दू-सम्राटो का भी निरन्तर बहमनी राज्य से युद्ध छिड़ा रहता था। वहाँ का सबसे अधिक शक्तिशाली राजा कृष्णदास १५०९-१५३० मे हुआ। उसने अपने पड़ौसी मुसलमान राजाओ को अनेक युद्धो मे हराया। उसके बाद १५५८ मे बीजापुर के सुलतान अली आदिलशाह ने विजयनगर के रामराजा के साथ संधि कर हिन्दू और मुसलमानो की एक बडी सेना को लेकर अहमदनगर पर आक्रमण किया। कहा जाता है कि रामराजा ने इस युद्ध मे बडी निर्दयता से मुसलमानो का नाश कर गत २०० वर्षो मे हिन्दुओ पर मुसलमानो ने जो अत्याचार किये थे उनका प्रतिकार करना चाहा। साथ ही उसने अपने मुसलमान साथी बीजापुर के सुलतान के साथ भी अच्छा सलूक न किया। अब दक्षिण के मुसलमान राज्य यह समझने लगे कि जब तक वे आपस मे एक साथ न मिल जायँगे तब तक वे विजयनगर के समृद्ध और शक्तिशाली साम्राज्य से टक्कर नही ले सकते। धीरे-धीरे बीजा-

पुर, बीदर, गोलकुंडा और अहमदनगर के चारो सुलतानों को यह विश्वास और भी दृढ होगया कि अपने-अपने स्वार्थ के लिए उन्हें आपस की प्रतिद्वंद्विता का परित्याग कर देना चाहिये और जातीय शत्रु हिन्दू-राज्य के विध्वस के लिए उन्हें एक साथ मिल जाना चाहिये। इस मेल को दृढ़ करने के लिए अहमदनगर के सुलतान हुसैन निजामशाह ने अपनी लड़की चाँदबीबी का विवाह बीजापुर के सुलतान अली आदिलशाह से कर दिया, और अलीआदिलशाह ने अपनी बहन का विवाह अहमदनगर के सुलतान के सबसे बड़े राजकुमार के साथ कर दिया।

इस प्रकार आपस मे मेलकर चारो सुलतानो ने विजयनगर के हिन्दू सम्राट्-रामराजा के साथ युद्ध प्रारम्भ कर दिया। वृद्ध रामराजा ने बडे कौशल से उनका सामना किया। परन्तु एक मस्त हाथी के आक्रमण से रामराजा रण-भूमि मे गिर पड़ा। उसके गिरते ही वह कैद कर लिया गया। और उसका सिर काट कर एक लबे भाले के द्वारा इस प्रकार ऊँचा कर दिया गया कि हिन्दू सेना को वह भली-भांति दिखाई दे सके। राजा के पतन के पश्चात हिन्दू रणक्षेत्र से भागने लगे, उनका पराजय हुआ और विजयनगर के समृद्ध साम्राज्य का विध्वस होगया। मुसलमान सुलतान निश्चित होगये उनके साम्राज्य की सीमा बढी।

३

चाँदबीबी मे विभिन्न प्राकृतिक गुणो का अद्वितीय सम्मिश्रण था। वह अनुपम सुन्दरी थी, बुरके के स्थान पर वह सदा पतले से कपडे का प्रयोग करती जिसमे से उसका देवदुर्लभ सौंदर्य छलकता रहता था। साथ ही वह युद्धकला मे भी निष्णात थी, उसका हृदय वीरता की भावनाओ से भरा था, और वह कुशल

घुड़सवार थी। युद्ध मे तथा शिकार मे वह सदा सुलतान का साथ देती थी इसके साथ ही ललितकलाओ और साहित्य से भी उसे बड़ा प्रेम था। वीणावादन मे राज्य भर मे उसका कोई प्रतिद्वन्द्वी न था, जिस समय अपने कोमल-करो मे वीणा लेकर वह अलापती, उस समय ऐसा प्रतीत होता था कि मानो वीणा-वर-दण्ड-मण्डित-करा भगवती भारती ने ही स्वयं इस संगीतसाज का समारोह किया हो। चित्रकला से भी उसे अत्यधिक प्रेम था, फूलों और प्राकृतिक दृश्यो के चित्रण का उसे बड़ा शौक था। अपनी मातृभाषा के अतिरिक्त वह अरबी, फारसी, तुर्की और मराठी भाषाएँ भी जानती थी, उनमे धाराप्रवाह बातचीत कर सकती थी। सारांश यह कि लक्ष्मी, सरस्वती और दुर्गा तीनो की ही उस पर कृपा प्रतीत होती थी।

पति-पत्नी दोनों मे अद्भुत प्रेम था। चाँदबीबी अपने पति के चरणों पर जीवन लुटाने के लिए सदा प्रस्तुत रहती थी। सुलतान अलीआदिलशाह भी उसे प्राणो से बढ़कर प्यार करता था। दोनो प्रेम-संसार मे बड़े आनन्द से जीवन बिता रहे थे। परन्तु विधाता ने किसका सुख देखा है! क्रूर काल ने अलीआदिलशाह को अधिक दिनों तक इस स्वर्ग-सुख को लूटने का सौभाग्य न दिया। सन १५ ८ मे अन्त पुर के एक सेवक द्वारा वह मार डाला गया। मृत्यु के समय अलीआदिलशाह ने अपने भतीज इब्राहीम आदिल का को अपना उत्तराधिकारी बनाया। किन्तु वह अभी बालक था राज्य की बागडोर पकड़ने की उसमे शक्ति नहीं थी। अत सुलतान ने चाँदबीबी को उसका सरक्षक नियत किया। इससे यह भली-भाँति प्रकट होता है कि सुलतान चाँदबीबी पर कितना विश्वास करता था इससे अधिक अच्छा चुनाव भी न हो सकता था। परन्तु

समय के बीतने के साथ-साथ सरदार बागी होने लगे, उन्हें एक स्त्री का शासन असह्य प्रतीत होता था, वे ईर्षा से जलने लगे। पहले उन्हें कुछ सफलता मिली, यहाँ तक कि चाँदबीबी को सितारा भाग जाना पड़ा। पर पीछे उनमें से प्रत्येक बीजापुर के सिंहासन पर अपना अधिकार जमाने की इच्छा करने लगा, उनकी पारस्परिक कलह से नवयुवक राजा को लाभ हुआ, जो कि अब शासन के काम मे हस्ताक्षेप करने लग गया था। चाँदबीबी को पुनः बुलाया गया और राजा ने उसका हार्दिक स्वागत किया। चाँदबीबी ने अपने पौरुष से विद्रोहियों को पराम्त कर चारों ओर शान्ति का नूतन साम्राज्य फैला दिया। परन्तु चाँदबीबी अब शासन-कार्य से उकता गई थी, और आराम चाहती थी, अतः वह केवल उस समय ही शासन का कार्य करती थी, जब कभी नवयुवक सुलतान युद्ध मे या दौरे पर जाता था।

४

परन्तु वह अधिक देर तक यह शान्त जीवन न बिता सकी। एक दिन अहमदनगर के एक दूत ने आकर सूचना दी कि वहाँ बड़ी गड़बड़ मची है चारों ओर अशान्ति का साम्राज्य है। सुलतान हुसैन निजामशाह स्वर्ग सिधार चुके है, सिंहासन पाने के लिये दो दलों मे भयंकर विद्वेष की अग्नि प्रज्वलित हो रही है। राज्य इस तरह गृह-कलह मे व्यस्त है और उधर शक्तिशाली दिल्ली-सम्राट् अकबर का पुत्र शाहजादा मुराद अपनी असंख्य सेना के साथ दक्षिण के राज्यों को पराधीन बनाने के लिए इधर आ रहा है और अहमदनगर को हथियाने की सोच रहा है। इस समय आप चलकर अपने पिता के राज्य की रक्षा करें और वहाँ शान्ति स्थापित करें।

चाँदबीबी इस प्रार्थना की उपेक्षा न कर सकी। वह गृह-कलह के कारण अपने पिता के राज्य को दूसरे के हाथ में जाते हुए न देख सकती थी। तत्क्षण वह अपने पुत्र अब्बास के साथ अहमदनगर को प्रस्थान करने के लिए प्रस्तुत हो गई। अहमदनगर के दूत से वह बोली—अपनी मातृभूमि की समृद्धि ही मुझे प्रिय है, परन्तु कुछ भी हो, मैं स्त्री ही हूँ। यदि तुम मुझे अपना नेता स्वीकार करने को तैयार हो तो मैं चलने को प्रस्तुत हूँ। यदि तुम इसके लिए प्रस्तुत न हो, अपने गृह-कलह को शान्त कर मुराद से लोहा लेने को तैयार न हो तो मेरे जाने का कोई फल नहीं।

दूत ने विश्वास दिलाया कि आपका नाम ही हम में उत्साह और साहस भर देगा और आपके वहाँ चलने से ही चारों ओर शान्ति हो जायगी। आप इस अवसर पर हमारी प्रार्थना स्वीकार कर अहमदनगर को चलें।

सुलताना बोली—तुम्हारा इतना आश्वासन पर्याप्त है। मैं अवश्य चलूँगी। यह मेरा कर्त्तव्य है और खुदा की यही मरजी है। शाहजादा मुराद भी समझ जायगा कि अहमद नगर का हथियाना सहज नहीं है।

दूत रवाना हुआ चाँदबीबी ने अपने पुत्र अब्बास तथा पुत्र वधू जोरा और कुछ चुने हुए सिपाहियों के साथ अहमदनगर की ओर प्रस्थान किया। अहमदनगर के लोगों ने बड़े प्रेम से उसका स्वागत किया। चाँदबीबी ने शीघ्र ही वहाँ की परिस्थिति का अध्ययन कर लिया, और वहाँ शान्ति और सुव्यवस्था की स्थापना कर दी। वास्तविक उत्तराधिकारी को अहमदनगर के सिंहासन पर बिठाया गया। साथ ही चाँदबीबी ने अहमदनगर की पहाड़ियों की रक्षा के लिए बीजापुर और गोलकुंडा के वीर सैनिकों को बुला लिया।

शिकार बना रहे थे और उनको मारकर अग्नि-वर्षा कर रहे थे। यदि कहीं से किले की दीवार टूट जाती तो सुलताना स्वयं अपने सामने उसको एकदम मरम्मत करवाती थी।

मुराद को यह आशा न थी कि उसे अहमदनगर को पराधीन बनाने में इतनी कठिनता का सामना करना पड़ेगा। इधर अकाल का डर था और दिन प्रतिदिन मुराद घबराता जाता था।

घेरा पड़ा रहा। एक दिन रात के समय चाँदबीबी अपने किले की छत पर टहल रही थी। इसी समय रात के अन्धकार में किसी ने उसे पुकार कर कहा—"बहादुर सुलताना! तुमने देश के मान के लिए खूब लड़ाई की है। परन्तु अब जहाँ पर तुम खड़ी हो, ठीक उसी स्थान के चारों ओर चार पाँच जगह पर सेंध लगा दी गई है और बारूद भर दिया गया है कल सवेरा होते-होते तुम्हारा किला मिट्टी में मिल जायगा। अब भी मुराद को आत्म-समर्पण कर दो, और इस रक्त-पात को बचा लो।" यह सुन कर अहमदनगर के सैनिकों में अत्यधिक भय का संचार हो गया। उनमें से कइयों ने सुलताना को आत्मसमर्पण के लिए कहा। परन्तु वह दृढ़ थी। उसने निर्भीक शब्दों में कहा—"आत्मसमर्पण सर्वथा असंभव है। मेरी नसों में जब तक रक्त की एक भी बूँद है तब तक मैं युद्ध करके देश की रक्षा करूँगी मेरे जीते-जी कोई शत्रु किले में प्रवेश न कर सकेगा। औरत हूँ तो क्या स्वयं परमात्मा मेरी सहायता करेगा। मैं अपनी कोमल अँगुलियों से पृथ्वी खोदकर बारूद के भय को दूर कर दूँगी परन्तु युद्ध न छोड़ूँगी। सुलताना के इन शब्दों ने सब सैनिकों में साहस भर दिया उनका हृदय दुगना हो गया और उन्होंने एकस्वर से सुलताना को विश्वास दिलाया कि प्राण रहते हम कभी भी आपका साथ न छोड़ेंगे।

यदि खुदा की मरजी होगी तो हम मर जायँगे, पर आत्मसमर्पण न करेंगे।

कुदाल हाथ मे ले रानी ने स्वयं अपने दल के साथ रात भर खोदकर बारूद को नष्ट कर दिया और वे तीन-चार स्थान जहाँ सेंध लगाकर बारूद भरी गई थी, सर्वथा निकम्मे हो गये।

मुगलों को किसी तरह इसकी सूचना मिल गई। शाहजादा मुराद शीघ्र ही उस स्थान पर पहुँचा। यह देखकर वह बड़ा निराश हुआ कि उसका महीने भर का काम एक ही रात मे मटिया-मेट हो गया। परन्तु एक ऐसा स्थान था जिसका पता सुलताना को न लगा था, और शाहजादा ने तत्क्षण ही उसमें आग लगाने की और किले पर आक्रमण करने की आज्ञा दे दी। बारूद के फटने से बड़े जोर का धड़ाका हुआ और एक स्थान पर दीवार फट गई। किन्तु चाँदबीबी विचलित होने वाली न थी। उसने एक क्षण की भी देर न की और चेहरे पर नकाब डाले हाथ में नंगी तलवार लेकर उस स्थान पर जा पहुँची। बहादुर सिपाहियों को ललकार कर बोली—बहादुरो! अपमान से मृत्यु अच्छी! आज तुम्हारी [illegible] का समय है, यदि तुम अपने देश का मान रखना चाहते हो तो [illegible] चट्टान की तरह खड़े हो जाओ। [illegible] कोई मुगल [illegible] दुश्मन न पायें।

[illegible] कि [illegible] सत्यानाश हो गया। परन्तु रानी ने [illegible] और कौशल से उसे बचा लिया। [illegible] [illegible] परन्तु [illegible] स्थान बन गया [illegible] [illegible] आक्रमण [illegible] [illegible] निशाना [illegible] [illegible] और सुलताना [illegible] प्रयत्न किया। आक्रमण [illegible] [illegible] स्थान की ओर [illegible]

रानी ने उस समय किले के भीतर की प्रत्येक तोप का मुख उसी
ओर मोड़ दिया और शाहज़ादा मुराद यह समझ गया कि
अहमदनगर को जीतना लोहे के चने चबाना है।

चाँदबीबी ने जो आशा की थी, वही हुआ। मुगल-सेना के
सेनापतियों ने यह समझ कर कि टूटे हुए स्थान से किले का रास्ता
खुल गया है, पिछली सेना को आगे बढ़ने की आज्ञा दे दी थी।
समुद्र की तरंगों के समान मुगल-सैनिकों की पंक्ति पर पंक्ति उस
ओर बढ़ रही थी। परन्तु दूसरी ओर से तोप के गोले अनथक
बन उन्हें धराशायी कर रहे थे। मुगलों का अत्यधिक जन-नाश
हुआ। जब रात पड़ने लगी तो इन्होंने धीरे-धीरे पीछे हटना
प्रारम्भ किया। जब अब्बास शत्रुओं को हरा कर उस स्थान से
वापिस आया तो माता चाँदबीबी और उसकी स्त्री ज़ोरा की आँखों
से हर्ष के आँसू उमड़ पड़े।

शाहज़ादा मुराद बुरी तरह अपमानित हुआ। एक स्त्री ने
उसे हरा दिया। मुराद ने समझ लिया कि उसका कोई प्रयत्न
अब सफल नहीं हो सकेगा, अतएव उसने बरार प्रान्त लेकर संधि
कर ली।

अहमदनगर में अब शान्ति का राज्य था। परन्तु वह शांति
क्षणिक थी। स्वार्थी मंत्री आपस में ही लड़ने लगे थे। फिर गृह-
कलह प्रारंभ हो गया। अकबर ने अपने दूसरे पुत्र दानियाल को
अहमदनगर को पराजित करने का दुबारा प्रयत्न करने को भेजा।

चाँदबीबी ने एक बार फिर मुगलों के साथ युद्ध की तैयारी
की परन्तु इस बार उसे विजय की आशा कम थी उसकी सेना
बहुत कम हो गई थी साधन भी न रहे थे अतः सफलता की
बहुत कम आशा थी।

माणक चन्द सेठिया "साहित्य-भूषण"
सेठिया जन पाठशाला, बीकानेर।

हाड़ी रानी

१

आजीवन दुःख भोगने वाली भगवती सीता जी का करुणा-पूर्ण आख्यान, धर्माचारिणी गांधारी द्वारा लोलुप पुत्र को दिया गया उपदेश तथा रण से विमुख कापुरुष पुत्र को पुनः रण-यात्रा के लिए उद्यत करती हुई वीर माता विदुला के वीर वचन हम लेख-बद्ध कर चुके, अपने सतीत्व की रक्षा के लिए जिसने अपने जीवन और सौन्दर्य को स्वाहा कर दिया उस पद्मिनी की, तथा स्वामी के पुत्र की रक्षा के लिए अपने अबोध शिशु का बलिदान करने वाली स्वामी-भक्ता पन्नाधाय की पुण्य-गाथाएँ भी हम चित्रित कर चुके, प्रबल शत्रु का मान-मर्दन करने वाली अपने देश और अपनी जाति की स्वतन्त्रता के लिए अपने प्राण होम देने वाली रानी दुर्गावती और सुलताना चाँदबीबी जैसी वीरांगनाओं का गुण-गान भी हम कर चुके, पर अगले पृष्ठों मे जिस देवी की कथा हम कहने लगे हैं, उसका छोटा-सा जीवन, उसका महान त्याग, उसका अनूठा बलिदान इन सबमें निराला है और किसी दृष्टि से इन सबसे महान् भी कहा जा सकता है। पाठकगण! आप स्वयं ही सोचिये, एक सर्वथा अपरिचित हिन्दू बहन के सतीत्व की रक्षा के लिए अपने प्राण देने को उद्यत पति को कर्त्तव्य-च्युत होता देखकर सद्य विवाहिता पत्नी का यह सोचना कि मेरे इस तुच्छ शरीर के मोह में पड कर ही वे कर्तव्य-च्युत हो रहे हैं और इसके नष्ट हो

जाने पर वे प्राणों का मोह छोड़ कर्तव्य का पालन कर सकेंगे और प्रसन्नता से अपना सिर काट करके दे देना कितना महान बलिदान है, कितना महान त्याग है! क्या इसकी कहीं समता मिल सकती है।

वह देवी, हाड़ी रानी के नाम से प्रसिद्ध है। उसका जन्म बूंदी के हाडा-वंश मे तथा विवाह मेवाड़ के वीर सरदार चूड़ावत से हुआ था। परन्तु अभी उसका ब्याह हुए दो चार दिन भी न हो पाये थे, अभी उसके हाथ का कंकण हाथ ही की शोभा बढ़ा रहा था, अभी सुहाग-रात भी न मनाई गई थी, कि उसके जीवन मे एक ऐसी घटना घटी जिसने उसके नश्वर जीवन का नाश कर उसके नाम को अमर कर दिया।

२

राठौरो की रूपनगर नाम की एक छोटी-सी रियासत थी। वहाँ की राजकुमारी प्रभावती अपने अद्वितीय रूपलावण्य के कारण बड़ी प्रसिद्ध थी। जब दिल्ली के सम्राट् औरंगजेब ने उसकी सौंदर्य की गाथा सुनी तब वह भी उसको पाने के लिए लालायित हो उठा। उसने रूपनगर के राजा के पास यह संदेशा भेजा कि प्रभावती को तत्क्षण दिल्ली भेज दो मैं उससे विवाह करना चाहता हूँ। संदेश के साथ ही साथ दो हजार घुडसवार रूपनगर को रवाना कर दिये।

उस समय देश के समस्त राजपूत दिल्ली के सम्राट् की सत्ता को स्वीकृत कर चुके थे। उदयपुर-नरेश को छोड सभी उसके चरणो मे मस्तक झुकाने को प्रस्तुत थे। फिर रूपनगर जैसी छोटी सी रियासत का राजा प्रतापशाली दिल्लीश्वर के कथन का कैसे तिरस्कार कर सकता था। तत्कालीन परिस्थिति मे उसके लि

सकती थी। कुमारी ने अपने काका को बुलाकर सारी कथा कही। काका ने भी असमर्थता प्रकट की। तब प्रभावती ने उन्हें अपना दृढ़ संकल्प बता दिया कि मैं मर जाऊँगी किन्तु औरंगजेब को अपनी छाया तक छूने न दूँगी। यदि आप मेरी रक्षा नहीं कर सकते तो विष या छुरी मेरी रक्षा करेगी।

प्रभावती को रात भर चिंता के कारण नींद नहीं आई। एक ओर औरंगजेब की विशाल शक्ति थी दूसरी ओर माता-पिता की विवशता और स्वीकृति। उसे अपना विनाश प्रत्यक्ष दिखाई दे रहा था, डर था कि उसके कारण कहीं रूपनगर भी न उजड़ जाय। उसे चिंतित देख उसकी एक सखी ने चिंता का कारण पूछा। प्रभावती ने उसे सारी कथा कह दी, और बतलाया कि कुछ ही दिनों मे औरंगजेब की सेना मुझे लेने को आ जायगी, पर उससे पहले ही मैं अपना अंत कर लूँगी, तुम सबसे सदा के लिए बिछुड़ जाऊँगी। सखी ने राजकुमारी को धीरज बँधाते हुए कहा—'बहन, विपत्ति आई है तो उसे अब सहना ही पड़ेगा किन्तु मैं तुम्हे एक युक्ति बताती हूँ कदाचित् इस युक्ति से तुम्हारे मान की रक्षा हो जाय, और तुम्हें प्राण न देने पड़े। हिन्दूपति उदयपुर-नरेश महाराणा राजसिंह बड़े दयालु और वीर है, तुम उन्हीं को पत्र लिखो वे अवश्य तुम्हारी सहायता करेंगे।

राजसिंह का नाम सुनते ही प्रभावती का हृदय-कमल आशा की किरणों से विकसित हो गया। मन ही मन कुछ विचार कर उसने महाराणा को पत्र लिखा और अपने विश्वस्त पुरोहित अनंतमिश्र के हाथ वह पत्र महाराणा की सेवा मे भेज दिया। पुरोहित को आदेश कर दिया था कि जिस प्रकार भी हो यह पत्र महाराणा के हाथ मे पहुँचाना और जिस समय वे पत्र पढ़ने लगें उस समय

विचार क्या है, इसने आपको इतनी चिंता में क्यों डाल दिया है ? जो राजपूत-कन्या आपको मन से वर चुकी है, यदि आप उसकी रक्षा न कर सकेंगे, तो उसका क्या होगा। क्या वह विधर्मियों के हाथ चली जायगी। हिन्दूपति के लिए इससे अधिक और क्या अपमान होगा ? जिस प्रतिष्ठा की रक्षा के लिए हमारे आपके हजारों बाप-दादों ने लाखों सुपुत्रों को हँसते-हँसते बलि चढ़ा दिया, उस प्रतिष्ठा की रक्षा मेवाड़ का अधीश्वर न कर सके इससे अधिक लज्जा की बात और क्या होगी ? यदि कन्या ने आत्म घात कर लिया, यदि मेवाड़-पति शरणागत की रक्षा न कर सका तो उसका तो कुछ न बिगड़ेगा, परन्तु मेवाड़ के पवित्र नाम पर धब्बा लग जायगा। मेवाड़ की प्रतिष्ठा की रक्षा के लिए शरणागत को अपनाने के लिए और राजपूत-रमणी के सम्मान की रक्षा के लिए आप विवाह की तैयारी कीजिए। हम प्राण देकर भी मेवाड़ की मान-रक्षा करेंगे।"

राणा ने उत्तर दिया—"कविराज मैं राठौर-कन्या के विवाह का प्रस्ताव अस्वीकृत न कर सकता था केवल आप लोगों की सम्मति की प्रतीक्षा कर रहा था। जब तक मैं इस सिंहासन पर बैठा हूँ तब तक आप लोगों के आशीर्वाद से मेवाड के मान की रक्षा प्राण देकर भी की जायगी। आप इस विषय में निश्चित रहें।"

राणा के वचन सुनकर सबके मुख हर्ष से खिल उठे। रूपनगर के पुरोहित को वचन दिया गया कि राजकुमारी किसी प्रकार की चिंता न करे। राजपूत-गौरव की रक्षा अवश्य ही की जायगी। पुरोहित राणा को इस निश्चय पर बधाई देकर विदा हुआ।

अब प्रश्न यह था कि सम्राट् औरंगज़ेब का सामना कैसे किया जाय और फिर विवाह की घड़ी से पहले प्रभावती को लाना

भी आवश्यक था। यह निश्चय हुआ कि राणा कुछ चुने हुए सरदारों को साथ लेकर सीधा रूपनगर पहुँचें, और कुछ वीर राजपूत अपनी जान पर खेलकर रूपनगर की ओर जाते हुए औरंगजेब को रास्ते मे ही रोक रखें। विजय और कार्य-सिद्धि का एक मात्र यही उपाय था। परन्तु इन जान पर खेलने वाले बलिदान के पथिकों का नायक कौन हो, यह एक कठिन प्रश्न था।

दिल्ली के सम्राट् की सेना का सामना करना सहज काम न था। साक्षात् अग्नि से खेलना था। यह सोचकर वीर सरदार भी एक बार सिहर उठे। जो वीर राणा को मान-रक्षा के लिए कह रहे थे, वे ही अब मौन थे। राणा विस्मित थे, वे कुछ कहना ही चाहते थे कि इतने मे बीस वर्ष का नवयुवक वीर चूडावत सरदार उठा और गरजकर बोला—'महाराणा! एकलिंग देव को साक्षी रख कर प्रतिज्ञा करता हूँ कि जब तक आप विवाह कर रूपनगर से उदयपुर न पहुँच जायँगे, तब तक औरंगजेब का मार्ग रोके रहूँगा, उसे एक पग भी आगे न बढने दूँगा।"

इस वीर-प्रतिज्ञा को सुन कर राणा प्रसन्न हो गये। उदयपुर में रणभेरी बज उठी। सामंत सरदार एकत्र होने लगे, राणा राजसिंह चुने हुए सरदारो के साथ रूपनगर को रवाना हुए। वीर चूड़ावत सरदार भी सेना समेत आगरा और रूपनगर के बीच, औरंगजेब का रास्ता रोकने के लिए चलने को प्रस्तुत हुए। इतने मे उनकी दृष्टि सामने वाले राजप्रासाद की झिंझरीदार खिडकी पर जा पड़ी, जहाँ पर उनकी नव-विवाहिता पत्नी हाड़ी रानी खड़ी थी। चूडावत विह्वल हो उठे। सेना को वहीं ठहरने का आदेश दे वे प्रासाद की ओर चल पड़े।

४

चूड़ावत के पहुंचने से पहले ही उनकी प्रतिज्ञा का वृत्तान्त हाड़ी-रानी के पास पहुंच चुका था। वह प्रसन्न हो रही थी, वह अपने सौभाग्य पर गर्व कर रही थी, परन्तु उसी समय जब उसने अपने पति के श्री-हीन मुख की ओर देखा तो बोली—सरदार जी इस अवसर पर आपका मुख मुरझाया हुआ क्यों है ?

चूड़ावत ने उत्तर दिया—प्रिये रूपनगर की राजकुमारी को बादशाह बलात ले जाना चाहता है, उससे पहले वह हमारे राणा को पति वर चुकी है। राणा उसको लेने रूपनगर को रवाना हो रहे हैं और मैं बादशाह को रास्ते में रोकने के लिए जा रहा हूं। मुझे आशा नहीं कि मैं इस युद्ध से लौट सकूं। मुझे मृत्यु से भय नहीं है। जिस दिन मुझे मृत्यु का भय होगा उस दिन मेरे पूर्वजों का नाम कलंकित हो जायगा। मुझे यदि कोई चिंता है तो तुम्हारी ही। तुम अभी ब्याही आयी हो, जीवन का कुछ भी सुख तुमने नहीं भोगा। तुम्हारे कंकण भी अभी तक नहीं खुले और मैं मरने जा रहा हूं। घोड़े पर चढ़ते ही मैंने ज्यों ही तुम्हारी ओर देखा, त्यों ही मेरा हृदय का आनन्द काफूर होगया।

हाड़ी रानी हृदय पर हाथ धरकर बोली—प्राणनाथ! सत्य और न्याय की रक्षा के लिए लड़ने जाते समय सहज सुलभ सांसारिक सुखों की बुरी वासना को मन में घर करने देना, आपके समान प्रतापी क्षत्रिय कुमार के लिए उचित नहीं। आर्य महिलाओं के लिए समस्त संसार की सारी सम्पत्तियों से बढ़कर सतीत्व ही अमूल्य धन है। जिस दिन मेरे तुच्छ सांसारिक सुखों की भोग-लालसा के कारण मेरी एक प्यारी बहन का सतीत्व-रत्न लुट जायगा उसी दिन मेरा जातीय-गौरव अरवली शिखर के ऊंचे

मस्तक से गिर कर चकनाचूर हो जायगा। यदि आप रणस्थल में विजय पाकर लौटेंगे तो मेरे लिए बड़े गौरव की बात होगी। यदि आपने क्षत्रियों की तरह युद्ध-क्षेत्र में ही स्वर्गलोक को प्रयाण किया, तो यह दासी भी आप का अनुगमन करेगी। इसलिए ऐसे शुभ समय पर आप सब माया-मोह त्याग कर आनन्द-पूर्वक रणस्थल की यात्रा करें। विश्वास रखिये कि मैं अपने कर्त्तव्य-पालन में किसी तरह की त्रुटि न करूँगी।

चूड़ावत सरदार रानी की बात सुनकर हर्ष से उसका आलिङ्गन कर चलने को प्रस्तुत हुए, और बोले—"अच्छा अब हम मर कर अमर होने जाते हैं, देखना प्यारी कहीं ऐसा न हो कि • •••।

इसके बाद वे बोल न सके। रानी उनके मन के भाव को समझ कर बोली—प्राणप्यारे! इतना अवश्य याद रखिये कि छोटा बच्चा चाहे आसमान छू ले, सीपी में चाहे समुद्र समा जाय, हिमालय चाहे हिल जाय पर भारत की सती देवियाँ अपने प्रण से तनिक भी नहीं डिग सकतीं। चूडावत जी प्रेमभरी नज़रों से एक-टक रानी की ओर देखते हुए सीढी से उतर पड़े और रानी सतृष्ण नेत्रों से ताकती रह गई।

अब रानी विचार करने लगी कि प्राणनाथ का मन जब तक मेरी ओर लगा रहेगा तब तक वे एक-चित्त होकर युद्धक्षेत्र में अपना कर्तव्य-पालन न कर सकेंगे। इधर सरदार के मन में यह सन्देह था कि क्या मेरे पीछे रानी अपने धर्म का पालन कर सकेगी? यह सोचकर उन्होंने अपने सेवक को फिर रानी के पास भेजा।

ने विनयभाव से रानी से कहा—'चूडावत जी चिह्न चाहते दृढ़ आशा और अटल विश्वास का। सन्तोप होने योग्य प्यारी

वस्तु दीजिए। और उन्होंने कहा है कि मेरे मरने के बाद अपने कर्त्तव्य-पथ पर डटे रहना।"

स्नेह-सूचक सम्वाद पाकर रानी को निश्चय होगया कि प्राणेश्वर का ध्यान जब तक इस तुच्छ शरीर की ओर लगा रहेगा तब तक निश्चय ही वे कृतकार्य न होंगे। इतना सोचकर वे बोलीं—"अच्छा खड़ा रह मेरा सिर लिये जा और उनसे कहना,मैंने अपना कर्त्तव्य पालन कर लिया। अब आप अपने कर्त्तव्य का पालन कीजिए।"

जब तक सेवक 'हाँ, हाँ' कहकर रोकने लगा—तब तक दाहिने हाथ में नंगी तलवार और बायें हाथ में लच्छेदार केशों वाला मुण्ड लिए हुए रानी का धड़ धड़ाम से धरती पर गिर पड़ा।

धन्य देवी, तुम धन्य हो। पति को कर्त्तव्य-मार्ग का प्रदर्शन तुम्हारे जैसी देवियाँ ही कर सकती हैं। बेचारे भय-चकित सेवक ने यह 'दृढ़ आशा और अटल विश्वास का चिह्न' काँपते हुए हाथों से ले जाकर चूडावत जी को दिया। उसे देख चूडावत जी प्रेम से पागल हो उठे।

> प्राण-प्रिया को सीसु ले परम प्रेम-उपहार
> चल्यो हुलसि रण-मत्त ह्वै चूडावत सरदार
> पायो प्रणय-प्रसाद में निज प्यारी-प्रियसीस
> चूडावत ' उर धारि सो हह्यो समर-गिरीस

सुगंध से सिंचे हुए मुलायम बालों के गुच्छों को दो हिस्सों में चीर कर चूडावत जी ने सौभाग्य-सिन्दूर से भरे हुए सुन्दर शीश को गले में लटका लिया और शत्रु-सेना की ओर चल दिये। उस समय मालूम होता था कि मानो स्वयं भगवान रुद्रदेव भीषण वेष धारण कर शत्रु का नाश करने जा रहे हैं।

जब बादशाह ने मार्ग में एक दूसरा लश्कर देखा तो उसे

रखी थी तब उसने किसी प्राचीन प्रथा की अवहेलना न की थी।
अहिल्याबाई के शासन की प्रशंसा में जो कुछ कहा जाता है उसमें
अविश्वास का कोई स्थान नहीं है। वह एक अद्वितीय स्त्री थी,
जिसमें अभिमान का नाम न था, और जो भक्त होते हुए भी
पक्षपात से रहित थी। उसे रानी नहीं देवी कहा जाता है और
वह देवता का अवतार मानी जाती है। उसके चरित्र का जो
गंभीरतम चित्र दिया जा सकता है, उसके अनुसार वह अपने
सीमित क्षेत्र में अब तक होने वाले सर्वोत्तम शासकों में सब से
अधिक आदर्श तथा पवित्रतम कही जा सकती है—सब छोटी
और बड़ी जाति के मनुष्यों ने अहिल्याबाई के सम्बन्ध में जब
हालात पूछे गये तब ऐसा हाल कहीं भी नहीं मिला, जिस से उस
की धवल कीर्त्ति में कुछ लाछन लगता, वरन् अहिल्याबाई के
नाम श्रवण-मात्र से ही सब मनुष्य एकस्वर से उसके गुणों की
कीर्ति तथा उसके परोपकार का यश आनन्दित होकर गाते थे।
अहिल्याबाई के सम्बन्ध में जितना अधिक अन्वेषण किया गया
उतना ही अधिक पूज्यभाव और कौतूहल बढ़ता गया
[illegible]
अंगरेजी [illegible]
[illegible]

लगा। ऐसी दंत कथाएँ अन्य कई महापुरुषों के विषय में भी प्रचलित हैं। सर्प को छाया करते देख उसके मामा ने अनुमान किया मल्हारराव अवश्य राजा बनेगा, अतएव उसने अपनी लड़की गौतमी का विवाह मल्हारराव के साथ कर दिया। मरहठों में मामा की लड़की के साथ ब्याह होने की प्रथा प्रचलित है।

मल्हारराव गाँव में से गुजरते हुए सैनिकों को देख वैसा ही बनने की इच्छा करता था। एक दिन वह किसी को बिना बताये खणकाई के दुर्ग की ओर चला गया और वहाँ सेना में नियुक्त हो माता को सूचना देने के लिए रात को घर में आया। माता ने दूसरे दिन आशीर्वाद देकर विदा किया। सेना में भर्ती होने के अनन्तर थोड़े ही दिनों में मल्हारराव ने पर्याप्त प्रसिद्धि प्राप्त कर ली। यहाँ तक कि जगत् विख्यात बाजीराव पेशवा ने [illegible] दूसरी प्रसिद्धि सुनी तो उन्हें अपने पास पूना में बुलाया और [illegible] देर अपने पास रखकर सब प्रकार से [illegible] मल्हारराव की योग्यता और [illegible] पेशवा [illegible] विश्वास होने [illegible]

[illegible]

खंडेराव पर इसका प्रभाव पड़ा। राज्य-सम्बन्धी कार्य में उसने अपने पिता का हाथ बँटाना आरंभ किया। अहिल्याबाई के और भी अधिक समझाने से वह धीरे-धीरे युद्ध में भी जाने लगा।

मल्हारराव ने देखा कि अहिल्याबाई संपूर्ण-गृहकार्यों को उत्तम प्रकार से चलाने लगी है। इसलिए जब कभी वह स्वयं और खंडेराव बाहर जाते तब राज्य के कार्यों के ऊपरी निरीक्षण का भार भी अहिल्याबाई को सौप जाया करते। इस काम को भी अहिल्या ने भली प्रकार से चलाया। ऐसे अवसरों को प्राप्त कर उसने किशोरावस्था में ही राज्य के कार्य को भली भाँति चलाने की योग्यता प्राप्त कर ली थी।

अहिल्याबाई को पुराण-कथा आदि के श्रवण का बड़ा शौक था। महाभारत वह बड़ी श्रद्धा से सुनती थी। इसी तरह आराम से उसके दिन कट रहे थे। कुछ काल के बाद उसके एक लड़का और एक लड़की पैदा हुई, जिनका नाम क्रमश· मालेराव और मुक्ताबाई रखा गया।

४

एक बार मल्हारराव ने अपने पुत्र खंडेराव सहित भरतपुर पर चढ़ाई की। वहाँ के जाट भी अपने प्राण देने को युद्धक्षेत्र में आ पहुँचे। इसी युद्ध में वीर खंडेराव की मृत्यु हो गई। देवी अहिल्या का सौभाग्य-सिंदूर यौवनावस्था में सदा के लिए पोंछ दिया गया। अहिल्या ने पति के साथ ही सती होना चाहा। इस पर दु·खित मल्हारराव बोला— 'बेटी, खंडोजी तो मुझे इस बुढ़ापे में धोखा देकर छोड़ ही गया, अब तेरा मुख देख उसे मैं भुलाऊँगा। किन्तु यदि तू भी प्राण त्याग देगी तो मुझे भी, अपने प्राण तुझ से पहले ही दे देने पड़ेंगे।" वृद्ध ससुर को इस तरह विला-

विलख कर रोते देख देवी अहिल्या को भी अपना सकल्प त्यागना पड़ा।

पुत्र की मृत्यु के अनन्तर दुखित मल्हारराव तो प्राय सेना के साथ रहता, परन्तु घर मे रहकर अहिल्याबाई ही वार्षिक कर लेती, आय-व्यय का लेखा देखती और उसे जाँचती थी। सेना का व्यय अथवा जिस किसी व्यय की आवश्यकता होती, उतना धन अहिल्याबाई मल्हारराव के पास भेज देती। अहिल्याबाई के सिर पर राज्य का भार रहते हुए भी वह अपना अधिक समय दान-धर्म, तीर्थ, व्रत आदि मे ही व्यतीत करती थी। इतना सामर्थ्य या प्रभुता होते हुए भी क्रोध या अभिमान ने उसके हृदय को स्पर्श तक न किया था। खडेराव की मृत्यु के पश्चात् मल्हारराव ने अहिल्याबाई के नाम पर संपूर्ण राजकीय कार्य के कागज़ पत्र कर दिये और पेशवा को भी सूचित कर दिया। वे भी अहिल्याबाई की चतुरता और कार्यकुशलता को देखकर दंग थे और बारंबार स्वयं उसकी योग्यता की प्रशसा करते थे।

प्रसिद्ध पानीपत की लडाई लड़ने के पूर्व मराठो की जो स्थिति थी, उसको पुन प्राप्त करने तथा द्रव्य के लोभ से मराठा सरदारों ने उत्तरी भारत की ओर प्रस्थान किया। परन्तु ग्वालियर के समीप आलमपुर गाँव तक पहुँचते ही मल्हारराव का स्वास्थ्य बिगड़ गया, और मार्ग मे ही उनका देहान्त होगया। मरते समय मल्हारराव अपने साथ मे आये हुए विश्वस्त सरदार तुकोजीराव होलकर को अपने पौत्र मालोराव की देख-रेख का भार सौंप गये।

अब अहिल्याबाई के पुत्र मालोराव को गद्दी पर बिठाया गया, पर उसकी भी वर्ष भर के भीतर ही मृत्यु हो गई।

५

इन दुःखों से अहिल्याबाई का हृदय छलनी हो गया। किन्तु वह इन आपत्तियों से भी नहीं घबराई और धीरता-पूर्वक राज्य की बाग-डोर हाथ में ले राज्य का शासन करने लगी। अब वह राज्य के बाहरी कार्यों पर भी दृष्टिपात करती। राजमंत्री गंगाधर राव इस विपत्ति के अवसर में अपने लिए धन इकट्ठा करना चाहता था। उसने अहिल्याबाई से किसी को गोद लेने को कहा, पर अहिल्याबाई ने उसके प्रस्ताव को स्वीकृत नहीं किया, क्योंकि मंत्री का उसमें स्वार्थ था और वह अपने किसी निकट सम्बन्धी को गोद लेने का अनुरोध कर रहा था। इस पर मंत्री क्रुद्ध हो गया और वह पेशवा के चाचा राघोबा जी से जा मिला। राघोबा ने राज्य के लोभ से गंगाधर राव को साथ देने का वचन दिया। जब गुप्तचरों से अहिल्याबाई को पता लगा तो उसने नम्रभाषा में एक पत्र राघोबा को लिखा। परन्तु राघोबा ने उसकी उपेक्षा कर सेना के साथ इन्दौर की ओर प्रयाण किया।

इधर अहिल्याबाई भी अपनी सेना तैयार करके लड़ने को तत्पर हो गई। उसने अपने विश्वस्त सेनापति तुकोजी राव को सेना का नेतृत्व सौंपा और स्वयं वीर वेश धारण कर अस्त्र शस्त्र ले रण के लिए उद्यत हो गई। उसने गायकवाड और भोंसले से भी सहायता माँगी। भोंसला ने सहायता देना स्वीकृत कर लिया तथा नर्मदा के तट पर राघोबा की सेना का सामना करने के लिए डट गया। साथ ही पूना से पेशवा ने गुप्त पत्र भेज कर सहानुभूति प्रदर्शित की। इतनी तैयारी के अनतर वह इन्दौर से निकल गडबाखेड़ी नामक स्थान पर शत्रु सेना की प्रतीक्षा करने लगी।

अहिल्याबाई को लडाई के लिए तैयार देख कर गंगाधरर,

सकते थे और अपनी कष्ट-कहानी सुना सकते थे। इस प्रकार वह सायंकाल तक नित्य राज-काज में लगी रहती थी।

अहिल्याबाई बड़ी-धर्मात्मा थी। उसने काशी, मथुरा, प्रयाग, जगन्नाथपुरी, बदरीनाथ, रामेश्वर, सोमनाथ, आदि तीर्थों में मंदिर, धर्मशालाएँ और घाट बनवा दिये थे, तथा गरीबों के लिए 'सदाव्रत' खुलवा दिये थे जो अब तक अहिल्याबाई के नाम को अमर बनाये हुए हैं। इसके सिवाय अहिल्याबाई ने विश्वनाथ जी के मंदिर में सोने का पत्र भी चढ़वाया था। उसने अपने राज्य में अच्छी-अच्छी सड़कें बनवा दीं और उनके दोनों ओर छायादार पेड़ लगवा दिये थे।

अहिल्याबाई को अपने मान-अभिमान तथा ठकुरसुहाती की बातों से घृणा थी। एक ब्राह्मण ने इस देवी की प्रशंसा में एक पुस्तक बना उसे भेंट की। देवी ने पुस्तक सुनकर यह कहकर नर्मदा में फिकवा दी कि मुझ सरीखी पापिनी दूसरी दुर्लभ है, मुझ में ये सब प्रशंसनीय गुण नहीं हैं।

अहिल्याबाई का पुत्र पहिले ही मर चुका था। अब नाती नत्थू भी बीस वर्ष की अवस्था में संसार को छोड़ गया और उसके दु:ख में यशवतराव भी मर गया। पति के मर जाने से मुक्ता भी सती होना चाहती थी। देवी अहिल्या ने मुक्ता को सती होने से बहुत रोका, पर जब उसने न माना और एक पतिव्रता के लिए यह कार्य आवश्यक बताया, तब देवी अहिल्या ने हृदय कड़ाकर उसे सती होने की आज्ञा दे दी और उसकी चिता के आरोहण के समय एक भी आँसू न बहाया। अहिल्याबाई पर पुत्री की मृत्यु का गहरा प्रभाव पड़ा। उसका शरीर शोक से क्षीण होने लगा १८ इस चोट से वह सँभल न सकी।

अपने विश्वस्त सेनापति तथा सहायक तुकोजीराव होलकर के सहयोग से शासन-कर्मचारियों की सहायता से तथा जनता-जनार्दन के आशीर्वाद से अपने स्वर्गीय श्वसुर तथा पति के सम्पूर्ण राज्य पर ३० वर्ष तक शान्ति से शासन कर और प्रजा का पुत्रवत् पालन कर वह देवी सांसारिक चिन्ताओं और चोटों से जर्जरित हो सन् १७९५ में स्वर्ग सिधार गईं।

अहिल्याबाई ने स्त्री होकर भी जिस न्यायपरायणता से राज्य किया वैसा विरले ही किसी राजा ने किया होगा। अतएव आज भी महारानी का नाम गौरव और गर्व के साथ लिया जाता है, और कई लोग इन्हें अवतार तक कहते हैं।